

खण्ड 4

दलीय व्यवस्थाएँ और चुनावी राजनीति

---

## खण्ड 4 दलीय व्यवस्थाएँ और चुनावी राजनीति

---

दलिय व्यवस्था एवं लोगों की चुनावों में भागेदारी लोकतंत्र की सफलता की ओर इशारा करती है। इस खंड में तीन इकाइयाँ हैं जिनका संबंध भारत में दलिय व्यवस्था, चुनाव एवं नेतृत्व से है। इकाई संख्या 9 का संबंध राज्य की दलीय व्यवस्था से है तथा इकाई, 10 एवं 11 का संबंध चुनावी राजनीति तथा भारतीय राज्यों में राजनीति से है।



---

## इकाई 9 राज्य दलीय व्यवस्थाएँ\*

---

### संरचना

- 9.0 उद्देश्य
- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 राजनीतिक दल का अर्थ और दलीय व्यवस्था
- 9.3 राज्यों में कांग्रेस प्रभुत्व के दौरान दलीय व्यवस्था
- 9.4 1970–1980 दशकों के दौरान राज्यों में दलीय व्यवस्था – विस्तृत विशेषताएँ
- 9.5 1990 दशक से राज्यों में दलीय व्यवस्था
  - 9.5.1 राज्यों में बहु-दलीय व्यवस्था
  - 9.5.2 द्वि-दलीय व्यवस्था राज्यों में
- 9.6 सारांश
- 9.7 संदर्भ
- 9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

---

### 9.0 उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :-

- दलीय व्यवस्था के अर्थ को समझा कर सकेंगे;
- विभिन्न राज्यों की दलीय व्यवस्था के तरीकों के अंतर को समझा सकेंगे;
- दलीय व्यवस्था में हुए परिवर्तनों की चर्चा कर सकेंगे, तथा
- दलीय व्यवस्था को सामाजिक एवं आर्थिक ढाँचे के साथ जोड़ सकेंगे।

---

### 9.1 प्रस्तावना

---

प्रतिनिधी लोकतंत्र में लोग अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करते हैं और ये प्रतिनिधी ही कार्यपालिका का हिस्सा होते हैं और लोगों की तरफ से कानून बनाते हैं। मुख्य रूप से राजनीतिक दल ही चुनावों में उम्मीदवारों को उतारते हैं तथा ये प्रत्याशी निकायों में उनका प्रतिनिधित्व करते हैं। चूंकि लोकतंत्र में चुनाव जरूरी होते हैं इसलिये राजनीतिक दल महत्वपूर्ण हो जाते हैं। राजनीतिक दल आमतौर पर सरकार में अपनी भूमिका निभाते हैं और अपने हितों की रक्षा करते हैं। इस प्रकार प्रतिनिधी लोकतंत्र में राजनीतिक दल अपने प्रत्याशियों के लिये प्रकार करते हैं तथा समर्थन प्राप्त करते हैं। राजनीतिक दल एवं उनके प्रत्याक्षी जब विधायी निकायों में चुन लिये जाते हैं तब वे लोगों की मांगों एवं उनकी अपेक्षाओं के लिये काम करते हैं। भारतीय राज्यों में कई प्रकार के राजनीतिक दल होते हैं। इस इकाई में आप भारतीय राज्यों की दलीय व्यवस्था के बारे में पढ़ेंगे।

---

\* प्रोफेसर अरुण कुमार जाना, राजनीति विज्ञान विभाग, नॉर्थ बंगाल, सिलीगुड़ी दार्जिलिंग तथा मौली डे, रिसर्च स्कॉलर, राजनीति विज्ञान विभाग, यूनिवर्सिटी ऑफ नॉर्थ बंगाल, सिलीगुड़ी, दार्जिलिंग।

## 9.2 राजनीतिक दल का अर्थ और दलीय व्यवस्था

राजनीतिक वैज्ञानिकों के बीच राजनीतिक दलों एवं उनके अर्थ एवं लक्ष्यों के बारे में एक सामान्य राय है। एक राजनीतिक दल एक संगठन है जिसका उद्देश्य प्रतिनिधियों के माध्यम से सरकार में शामिल होना या सरकार बनाना है। इसका प्रमुख उद्देश्य सत्ता प्राप्त करना है। उम्मीदवार राजनीतिक दलों के सदस्यों के रूप में चुनाव लड़ते हैं तथा वे विधायी निकायों में लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। राजनैतिक दल एक लोकतांत्रिक देश में अलग-अलग लोगों का समर्थन पाने के लिये प्रतिस्पर्धा करते हैं। स्केवार्ज एवं लॉसन के अनुसार (2005) राजनीतिक दल “एक ऐसा संगठन है जो उम्मीदवारों को चुनाव में खड़े होने के लिये नामित करता है और सरकार में प्रतिनिधियों को जगह देना चाहता है”। दलीय व्यवस्था किसी देश में राजनीतिक दलों की संख्या को निरूपित करती है। एक दलीय व्यवस्था के अंदर एक दल की उपस्थिति को दर्शाता है जहाँ अन्य दल अनुपस्थित रहते हैं या उनका कोई महत्व नहीं होता है। द्वि-स्तरीय व्यवस्था में दो दलों की उपस्थिति होती है जबकि बहु-दलीय व्यवस्था में अनेक राजनैतिक दल होते हैं। इस प्रकार भारतीय राज्य में दलों की संख्या की उपस्थिति उनकी प्रकृति को दर्शाती है। चुनाव आयोग उनके समर्थन एवं मान्यता के आधार पर राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय, राज्य/क्षेत्रीय, गैर-मान्यता प्राप्त दल के रूप में वर्गीकृत करता है। कई मौके पर, खासकर चुनाव लड़ने या सरकार का गठन करने में राजनीतिक दल गठबंधन या मोर्चा बनाते हैं। ऐसे गठबंधनों की सदस्यता राजनीतिक दलों की जरूरतों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है।

## 9.3 राज्यों में काँग्रेस पार्टी के प्रभुत्व के दौरान दलीय व्यवस्था

भारतीय राज्यों की दलीय व्यवस्था को हम अच्छी भांति तभी समझ सकते हैं जब भारत में उसे राष्ट्रीय स्तर पर दलीय व्यवस्था के साथ जोड़कर देखें। भारत में 1970 के दशक तक एक ही पार्टी का वर्चस्व था, वह पार्टी थी काँग्रेस रजनी कोठारी ने 1950-1960 के दशक को काँग्रेस के प्रभुत्व का युग या “काँग्रेस व्यवस्था” कहा था। कई राज्यों में, अखिल भारतीय स्तर की तरह एक पार्टी ही अस्तित्व में थी। लेकिन कुछ राज्यों में काँग्रेस पार्टी के साथ-साथ अन्य दल भी मौजूद थे। उदाहरण के तौर पर, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का केरल और जम्मू एवं कश्मीर में नेशनल कांफ्रेंस मजबूत आधार था। केरल में, सी.पी.आई. ने 1957-1959 में सरकार भी बनाई थी। 1960 के केरल विधान सभा चुनावों में काँग्रेस को बहुमत नहीं मिला तथा इसने पी. एस.पी. तथा मुस्लिम लीग के साथ मिलकर सरकार बनाई थी। नागालैंड में भी गैर-काँग्रेसी सरकार थी, जिसका नेतृत्व नागा नेशनल संगठन ने किया था, जो कि 1963 में विधान सभा चुनावों के बाद गठित हुआ था। यद्यपि कुछ राज्यों में स्वतंत्रता प्राप्ति के दो दशक तक काँग्रेस के अलावा अन्य दल भी थे, लेकिन राजनीतिक संदर्भ में, यह काँग्रेस के प्रभुत्व का ही दौर था, जैसा कि रजनी कोठारी ने कहा था। 1960 के दशक के अंत तक, काँग्रेस के वर्चस्व के युग का समापन शुरू हो गया था। उस वक्त कई राज्यों में गैर-काँग्रेसी सरकारों का गठन हो गया था जिसे संयुक्त विधायक दल कहते हैं। ये राज्य थे हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, मद्रास एवं केरल। काँग्रेस के पतन के कई कारण थे। इनमें काँग्रेस के भीतर

गुटबाजी तथा लोगों में काँग्रेस के खिलाफ बढ़ता असंतोष था। इसका प्रमुख कारण अकाल, भुखमरी, क्षेत्रीय असमानताएँ तथा दक्षिण भारत में भाषा का विवाद इत्यादि था। गैर-काँग्रेसी दलों जिनमें एस.एस.पी., पी.एस.पी., सी.पी.आई., जन संघ तथा आर. पी.आई. ने काँग्रेस की विफलता के खिलाफ लोगों को लामबंद किया था। इसने काँग्रेस के पतन और क्षेत्रीय दलों को उभरने का मौका दिया। विभिन्न राज्यों में पार्टी या दलीय व्यवस्था का पैटर्न अलग-अलग था जैसे कि द्वि-स्तरीय दलीय व्यवस्था तथा बहु-दलीय व्यवस्था। 1970 के दशक से लेकर 2020 तक भारत के कई राज्यों में दो दलीय व्यवस्था या बहु-दलीय व्यवस्था विद्यमान थी। द्वि-दलीय व्यवस्था में प्रमुख दलों का ही वर्चस्व ज्यादा था। इसका यह मतलब नहीं कि अन्य दलों का अस्तित्व नहीं था, बल्कि इसका मतलब यह था कि दो दल ज्यादा प्रभावी थे, जबकि अन्य दलों का प्रभाव कम था। बहु-दलीय व्यवस्था में, एक या दो से अधिक दलों की भूमिका राज्य की राजनीति में होती है। राज्यों में दलों की संख्या में परिवर्तन होता रहता है। नये दलों का उदय तथा पुराने दलों का लुप्त हो जाना यह एक निरंतर प्रक्रिया है जो कई कारणों पर आधारित है। इनमें सबसे प्रभुत्व करना है पार्टियों के भीतर गुटबाजी और विभाजन, नये नेतृत्व का उदय जो कि कुछ सामाजिक समूहों का प्रतिनिधित्व करते थे, तथा विस्थापित राजनीतिक दलों के खिलाफ लोगों का गुस्सा। निम्न खंड दलीय व्यवस्था की पैटर्नों से संबंधित है जो 1970 के बाद देखे गए हैं। यह खण्ड विभिन्न राज्यों में दलीय व्यवस्था के चरित्र की चर्चा करता है।

#### 9.4 1970–1980 के दशकों में राज्यों में दलीय व्यवस्था : विस्तृत विशेषताएँ

1967 के चुनावों में भारतीय राज्यों में द्वि-दलीय या बहु-दलीय व्यवस्था का उदय हुआ। 1967 के चुनाव में काँग्रेस का राज्यों में खराब प्रदर्शन रहा इसका प्रमुख कारण काँग्रेस के खिलाफ लोगों का आक्रोश था, जो कि 1960 के दशकों के बाद बढ़ता गया। 1970–1980 के दशक में भारतीय राज्यों में दो दलीय व्यवस्था की व्यापकता थी। हालांकि कई राज्यों में दो से अधिक दलों का अस्तित्व था लेकिन दलीय व्यवस्था में द्वि-दलीय व्यवस्था का प्रभुत्व था। इस द्वि-दलीय व्यवस्था में दो दल अन्य दलों की तुलना में अधिक प्रभावी होते हैं। दो प्रमुख और प्रभावीशाली दलों के अलावा अन्य दलों का प्रभाव कम था। इन प्रमुख पार्टियों में काँग्रेस अधिकांश राज्यों में मौजूद थी और क्षेत्रीय पार्टी इसकी प्रतिद्वंद्वी थी। काँग्रेस की उत्पत्ति राष्ट्रीय आंदोलन में हुई थी जबकि 1960 के दशक के उत्तरार्ध में राज्यों में अन्य पार्टियों का जन्म काँग्रेस की गिरावट से हुआ था। ये दल क्षेत्रीय आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं और इनका नेतृत्व भी क्षेत्रीय नेताओं द्वारा किया गया था। 1970–1980 के दशकों के दौरान विभिन्न राज्यों में द्वि-दलीय व्यवस्था के उदाहरण देखे जा सकते हैं। उत्तर प्रदेश में चरण सिंह ने 1969 में एक क्षेत्रीय पार्टी की स्थापना की जिसे भारतीय क्रांति दल के तौर पर जाना जाता है। इसका प्रमुख आधार कृषक समुदाय के लोग जाट, यादव, कुर्मी जो कि प्रमुखतया उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में था। इन समुदाय के लोगों ने भूमि-सुधार का लाभ उठाया था तथा जो पश्चिमी उत्तर प्रदेश में हरित क्रांति से भी लाभान्वित हुए थे। उस समय बी.के.डी. और काँग्रेस के साथ यू.पी. में दो सबसे प्रभावशाली दल थे। काँग्रेस और बी. के. डी. के अलावा अन्य दल भी थे जैसे सोशलिस्ट पार्टी या संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, लेकिन इसका प्रभाव इन दो दलों से कम था। 1977 और 1980 दशक में जनता पार्टी भारत में प्रमुख राजनीतिक दल बन गए

थे और काँग्रेस को हाशिये पर पहुँच गई थी। इसकी केन्द्र व अन्य राज्यों में सरकार भी बन गई थी। जनता पार्टी का गठन कुछ दलों के विलय के बाद हुआ था। उनमें से कुछ दलों ने आपातकाल (जून 1975 – मार्च 1977) का विरोध किया था। जनता पार्टी के गठन के लिये जिन पार्टियों ने विलय किया, उनमें जनसंघ, भारतीय लोक दल, काँग्रेस (ओ) और काँग्रेस फॉर डेमोक्रेसी शामिल थी। लेकिन जनता पार्टी भी लंबे समय तक अस्तित्व में नहीं रही। यह पार्टी आंतरिक असंतुलन के कारण विघटित हो गई थी, मूल रूप से जनता पार्टी बनाने में लिये विलय कर चुके दलों ने अलग-अलग नामों के साथ स्वतंत्र पहचान बना ली थी। यूपी. में चरण सिंह ने पहली पार्टी बनाई जिसका नाम था जनता दल (एस)। उसके उन्होंने बाद दलित मजदूर किसान पार्टी तथा अंत में लोक दल बनाया गया था। यह दल चौधरी चरण सिंह की मृत्यु 1987 तक अस्तित्व में था। 1988 में इसका भी विलय अन्य दलों में हो गया था जैसे जनता पार्टी, जनता दल (सेकूलर) इंडियन नेशनल काँग्रेस (उर्स) और जन मोर्चा जिसके कारण जनता दल बना। उस वक्त तक उत्तर प्रदेश में काँग्रेस और लोकदल दो ही प्रमुख दल थे। बिहार में भी 1970-1980 के दशकों में द्वि-दलीय व्यवस्था मौजूद थी। इस राज्य में, जनता दल के गठन के पहले, काँग्रेस के विरोधी दल के रूप में सोशलिस्ट पार्टी, जनता पार्टी या लोक दल रह गए थे। 1979 में बिहार में भी जनता पार्टी का विभाजन हुआ था। लोक दल और काँग्रेस बिहार में प्रमुख राजनीतिक दल थे। 1979 में लोक दल का स्थान जनता दल ने ले लिया था। पंजाब, राजस्थान, महाराष्ट्र और हिमाचल प्रदेश में द्वि-दलीय व्यवस्था की विशेषताओं थी। दो मुख्य दलों में मौजूद थीं, जबकि काँग्रेस इन सभी राज्यों में मौजूद थी, प्रत्येक राज्य में कांग्रेस का एक मुख्य विपक्षी दल भी था। काँग्रेस के विपक्ष में पंजाब में अकाली दल, राजस्थान ने बी.जे.पी. एवं महाराष्ट्र में शिव सेना थी। गैर-काँग्रेसी दलों ने लोगों की अपेक्षाओं का प्रतिनिधित्व किया था। यहाँ यह बात गौर करने लायक है कि कई राज्यों में 1970-1980 के दशक में अन्य पार्टियाँ भी अस्तित्व में थी। लेकिन ये दल या तो निष्प्रभावी थे या फिर ये कुछ समय तक ही अस्तित्व में थे। इस कारण 1970 से 1980 के दशक में कई राज्यों में दो-दलीय व्यवस्था दलीय व्यवस्था की मुख्य विशेषता बन गई।

#### अभ्यास प्रश्न 1

- 1) “काँग्रेस व्यवस्था” के पतन के क्या कारण थे?

.....

.....

.....

.....

.....

- 2) 1970-1980 के दौरान राज्यों में दलीय व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं की व्याख्या कीजिये।

.....

.....

.....

## 9.5 1990 के दशक से राज्यों में दलीय व्यवस्था

1990 से 2010 दशकों के दौरान भारतीय राज्यों में बहु-दलीय व्यवस्था का अस्तित्व था। इस दौरान राजनीतिक दलों में कई प्रकार का बिखराव देखा गया जो कि भारतीय दलीय व्यवस्था की एक विशेषता बन गई थी। कुछ राज्यों में दो-दलीय व्यवस्था की उपस्थिति भी देखी गई थी। यह काल भारत में आर्थिक सुधारों का काल भी माना जाता है। इसका एक कारण संघीय ढाँचे में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव बढ़ता प्रभाव था। इस संदर्भ में, सेज (2002) ने अपने अध्ययन में यह पाया कि भारतीय संघ के 12 राज्यों में क्षेत्रीय दलों का प्रमुख स्थान है और इन दलों ने राज्य विधान सभाओं में बहुमत प्राप्त करके कई सरकारें भी बनाई थी। आप यह जानते होंगे कि भारत में 28 राज्य हैं और 8 केन्द्र शासित प्रदेश है। इनमें ज्यादातर में द्वि-दलीय या बहु-दलीय व्यवस्था है। इस इकाई में हम 1990 के दशक से कुछ राज्यों की दलीय व्यवस्था की चर्चा करेंगे। इन उदाहरणों से हमें भारतीय राज्यों की दलीय व्यवस्था के लक्षणों को समझने में मदद मिलेगी। किसी राज्य में दलों का कम होना या ज्यादा होना वहाँ की सामाजिक व्यवस्था में आये परिवर्तन का असर है तथा वहाँ के नेताओं और पार्टियों के बीच संबंध भी इसका प्रमुख कारण है। राजनीतिक दलों की संख्या में वृद्धि का। वे सामाजिक समूह जो समाज में आये बदलाव के कारण उभरे हैं, किसी भी दल के भीतर गुटबाजी या मुख्य दलों के भीतर उचित पदों के लिये अवसरों की कमी ये कुछ प्रमुख कारण है। जैसा कि आपने इस इकाई के पूर्व भाग में पढ़ा होगा, 1950 से 1980 के दशकों इन चार दशकों के दौरान भारतीय राज्यों में पार्टी व्यवस्था में बदलाव आया है। जिसमें मौटे तौर पर एकल प्रभुत्व से द्वि-दल या बहु-दलीय व्यवस्था में परिवर्तन देखा गया है। 1990 के दशक से भारतीय राज्यों में फिर से दलीय व्यवस्था में महत्वपूर्ण बदलाव देखे गये हैं। इस अवधि के दौरान कई राज्यों में राजनीतिक दलों की संख्या कई गुणा हो गई है। यह भारतीय राज्यों में बहु-दलीय व्यवस्था की विशेषता की उपस्थिति को इंगित करता है। वास्तव में भारत के कुछ राज्यों में बहु-दलीय व्यवस्था है जबकि अन्य राज्यों में दो-दलीय व्यवस्था का अनुसरण किया जाता है। राजनीतिक दलों के साहित्य में, भारतीय राज्यों में कई दलों का उदय पार्टियों के गुणन या विखंडन के रूप में वर्णित किया गया है। यह 1990 के दशक से 2010 तक कुछ राज्यों में दलीय व्यवस्था की विशेषताओं से संबंधित एक सूचक है। यह कुछ राज्यों में पार्टी व्यवस्था के उदाहरणों को प्रस्तुत करता है। ये उदाहरण लगभग सभी राज्यों में दलीय प्रणालियों की व्यापक विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

### 9.5.1 राज्यों में बहुदलीय व्यवस्था

उत्तर प्रदेश, बिहार, तमिलनाडु एवं अन्य कई राज्यों में बहु-दलीय व्यवस्था है। उत्तर-प्रदेश, बिहार और तमिलनाडु के उदाहरणों के साथ इस अनुभाग में हम राज्य दलीय व्यवस्था की चर्चा करेंगे। 1990 के दशक से भारत में बहु-दलीय व्यवस्था, राज्यों की प्रमुख विशेषता बन गई थी। बी.एस.पी. के उदय के साथ 1980 के अंत में दलों का गुणात्मक स्वरूप देखने को मिला था। बी.एस.पी. ने समाज बहुजन के वर्गों की समस्याओं को सुलझाने पर जोर दिया था। बी.एस.पी., ओ.बी.सी., महिलाओं, धार्मिक अल्पसंख्यकों एवं समाज के वंचित वर्गों की पार्टी हैं। यद्यपि बी.एस.पी. का समर्थन आधार समाज के विभिन्न वर्गों में है, लेकिन, इसके ज्यादातर समर्थक दलित समुदाय से आते हैं। इस पार्टी की नेता मायावती 1990 और 2010 के मध्य चार बार

मुख्यमंत्री बनी है। इसने वंचित वर्गों के कल्याण के लिये कई प्रकार के कार्यक्रम किये। तथा इसने दलित एवं वंचित वर्गों की सांस्कृतिक पहचान को भी, आगे बढ़ाया। बी.एस.पी. के अलावा इस दौरान उत्तर प्रदेश में अन्य दल भी अस्तित्व में थे। इनमें बी.जे.पी., काँग्रेस, जनता दल, आर.एल.डी. तथा समाजवादी पार्टी प्रमुख पार्टियां थी। इनके अलावा भी अन्य जाति आधारित छोटी-छोटी पार्टियां भी राज्य में विद्यमान थी। इन राजनीतिक दलों में जनता दल जिसकी स्थापना 1988 में हुई थी बहुत कम समय तक ही अस्तित्व में था। अपने गठन के कुछ समय बाद ही उत्तर प्रदेश में जनता दल का विभाजन हो गया और वह दो दलों में बंट गया। इनमें एक अजीत सिंह के नेतृत्व में आर. एल. डी. तथा दूसरा मुलायम सिंह यादव के नेतृत्व में समाजवादी पार्टी के तौर पर सामने आया था। कई समय तक उत्तर प्रदेश में विभिन्न राजनीतिक दलों का प्रभाव चुनावों में अलग-अलग रहा है। इस दौरान काँग्रेस का प्रभाव कम हो गया एवं बी.जे.पी. तथा तथा अन्य पार्टियों का प्रभाव बढ़ने लगा। काँग्रेस के अलावा, एस. पी., बी.एस.पी., आर.एल.डी., बी.जे.पी. एवं अन्य जाति आधारित पार्टियों ने 1993 से 2020 तक सरकार बनाई या सरकार का हिस्सा थीं। ये दल सरकार बनाने में सहयोगी थे एवं गठबंधन का हिस्सा भी थे। 1990 दशक के अंत में, यूपी. में, एक विशेष जाति पर आधारित दलों का उदय को देखा है। इन दलों को विशेष जाति के नेताओं के द्वारा बनाया गया था जिनमें, पिछड़े वर्ग, अति-पिछड़े वर्ग शामिल है। इनमें से कुछ उदाहरण है जैसे कि अपना दल, जिसकी स्थापना सोनेलाल पटेल ने की थी और उसके बाद उसकी पुत्री अनुप्रिया पटेल इसकी नेता थी जो बाद में एन.डी.ए. सरकार में (2014-2019) में मंत्री भी बनी थी। इन सभी दलों का गठन विशेष जाति से संचित नेताओं के द्वारा किया गया था, जिनमें से कई पूर्व में बहुजन समाज पार्टी के सदस्य भी थे। क्योंकि उन्हें यह महसूस हुआ कि उनको इस पार्टी में उचित पहचान नहीं मिल रही है तो उन्होंने अपना अलग दल बनाने की सोची (सिंह 2021)। इन पार्टियों के नेताओं ने बड़ी पार्टियों के साथ सौदेबाजी करके चुनाव में अपना गठबंधन किया और उनके साथ मिलकर सरकार भी बनाई।

बिहार में 1990 से बहु-दलीय व्यवस्था अस्तित्व में थी। इस राज्य में ये विभिन्न दल उपस्थिति इस प्रकार है :- आर.जे.डी., जे.डी.यू., एल.जे.एस.पी., बी.जे.पी. तथा काँग्रेस। इसके अलावा वहाँ पर अन्य छोटे-2 दल भी मौजूद हैं, जैसे हम (हिन्दुस्तान अवाम मोर्चा) जिसका नेतृत्व जीतन राम माझी करते हैं, राष्ट्रीय लोक समता पार्टी जिसके नेता उपेन्द्र कुशवाहा हैं तथा इनकी संख्या और उनके नाम बदलते रहते हैं। इन पार्टियों की पहचान जो कि काँग्रेस एवं बी.जे.पी. से भिन्न हैं, उनके नेताओं से की जाती है। इन दलों की प्रमुख विशेषता है कि ये अन्य दलों जैसे जनता दल (यू), आर.जे.डी., एल.जे.एस.पी. से विभाजन के पश्चात् उभर कर सामने आये हैं। जैसा कि आपने पढ़ा है जनता दल का गठन वी.पी. सिंह ने किया था। यूपी. में जनता दल का विभाजन दो पार्टियों में समाजवादी पार्टी तथा राष्ट्रीय लोक दल जिनका नेतृत्व मुलायम सिंह यादव और अजित सिंह ने किया हुआ था। बिहार में इस दल का विभाजन तीन दलों में हुआ। ये दल है : आर.जे.डी. जिसके नेता लालू यादव हैं, जे. डी.यू. जिसके नेता नितिश कुमार हैं तथा एल.जे.पी. जिनके नेता रामविलास पासवान हैं। वास्तव में इन तीनों की विचारधारा एवं कार्यक्रम एक जैसे ही हैं। इन्होंने आपातकाल के पूर्व 1975 में जे. पी. आंदोलन में हिस्सा लिया। ये समाजवाद विचारधारा में विश्वास रखते हैं जिनके नेता राम मनोहर लोहिया एवं जयप्रकाश नारायण थे। उन्होंने सामाजिक रूप से वंचित समुदायों जैसे कि ओ.बी.सी., दलित



इत्यादि का भी प्रतिनिधित्व किया। यद्यपि, इन पार्टियों को विभिन्न सामाजिक और आर्थिक वर्गों का समर्थन प्राप्त था लेकिन इनका समर्थन का आधार प्रमुख तौर पर उनकी अपनी जातियों पर आधारित था जिनसे वे आते थे। एक ही पृष्ठभूमि के होने के बावजूद उन्होंने अलग दल बनाए। अलग दल बनाने के पीछे प्रमुख कारण उनके नेताओं के बीच राजनीतिक प्रतिस्पर्धा था। नये दलों का गठन, उनके विलय और उनके बीच गठबंधन बनाया, बहु-दलीय व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। विभाजन, विलय और गठबंधन, राजनीतिक दलों में आम बात है। विशेषकर चुनावी राजनीति के संदर्भ में और सरकार के गठन में। उदाहरण के लिये, जे.डी.यू. विभाजन हुआ और हिन्दुस्तान आवागम पार्टी का गठन हुआ, जिसका नेतृत्व उपेन्द्र कुशवाहा और जीतनराम मांझी ने किया। उपेन्द्र कुशवाहा जो वर्षों तक समता पार्टी के नेता थे, ने राष्ट्रीय समता पार्टी का गठन किया 2009 में, लेकिन उन्होंने इसे जे.डी.यू. में विलय कर दिया। लेकिन उन्होंने जे.डी.यू. छोड़कर, राष्ट्रीय लोक समता पार्टी बनाई। राष्ट्रीय लोक समता पार्टी को फिर से जे.डी.यू. में विलय कर दिया गया। राजनीतिक दलों का गुणन विभिन्न समूहों के बीच प्रतिस्पर्धा को दर्शाता है सत्ता संरचना में उनके हिस्से के लिये। इसे राज्यों में कांग्रेस की गिरावट के साथ चिन्हित किया गया है। और विभिन्न समुदायों में भाजपा के विस्तार का आधार के तौर पर भी देखा जाता है, तथा पिछड़े वर्गों, दलितों के नेताओं द्वारा दलों के गठन के तौर पर भी देखा गया है। 1990 के दशक से भाजपा का विस्तार कांग्रेस की गिरावट की तुलना में बहुत अधिक नाटकीय रहा है। 1990 के विधानसभा चुनावों में इसका प्रदर्शन शानदार रहा, हालाँकि उन राज्यों में जहाँ क्षेत्रीय दल हैं वहाँ इसका प्रदर्शन इतना नाटकीय नहीं रहा सिवाय महाराष्ट्र, पंजाब और असम को छोड़कर।

तमिलनाडु में 1990 के दशक से बहु-दलीय व्यवस्था का स्वरूप दिखाई दिया है। 2020 के दशक में तमिलनाडु में कुछ दल इस प्रकार हैं – डी.एम.के., ए.आई.ए.डी.एम.के., पी.एम.के.। इन पार्टियों को द्रविड़ पार्टियों के नाम से जाना जाता है। इसके अलावा, तमिल मलिना कांग्रेस (टी.एम.सी.), एम.आई.एम., सी.पी.आई., सी.पी.आई. (एम) कांग्रेस, बी.जे.पी. इत्यादि दल भी वहाँ पर हैं। कुछ राजनीतिक दलों को उनके नेताओं द्वारा भी जाना जाता है। इन्हें द्रविड़ पार्टियों के जाना जाता है जो द्रविड़ विचारधारा से भी प्रभावित होती है, इनका लक्ष्य जो लोगों को आत्म-सम्मान प्रदान कराना होता है। ये तमिल भाषा और द्रविड़ संस्कृति की रक्षा करने का भी प्रयास करती है। डी.एम.के. पहले डी.के. के नाम से भी जाना जाता थी। 1949 में डी.के. ही डी.एम.के. बनी जिनके नेता सी.एन. अन्नादुरे थे। 1972 में, डी.एम.के. के विभाजन दो दलों में हो गया और नया दल ए.आई.ए.डी.एम.के. बन गया। 1960 के दशक में ये दोनों द्रविड़ पार्टियाँ राज्य में मजबूत दल के रूप में उभर कर सामने आईं। उस से पहले कांग्रेस राज्य में, अन्य राज्यों की तरह मजबूत पार्टी थी। लेकिन द्रविड़ पार्टियों की तुलना में विशेषकर डी.एम.के. और ए.आई.ए.डी.एम.के., अन्य पार्टियों खासकर कांग्रेस, बी.जे.पी. तथा कम्युनिस्ट पार्टियाँ का आधार बहुत कम है। 1977 में, डी.एम.के. का विभाजन हो गया और एम.जी. रामचंद्रन के नेतृत्व में ए.आई.ए.डी.एम.के. का गठन हुआ। नरेन्द्र सुब्रमनियन के अनुसार (2002) द्रविड़ पार्टियों के अलावा अन्य दलों का गठन वहाँ की व्यवस्था की स्वायत्ता एवं लचीलेपन कारण हुआ है।

### 9.5.2 राज्यों में द्वि-दलीय व्यवस्था

भले ही बहुदलीय व्यवस्था राज्य पार्टी व्यवस्था में एक प्रमुख विशेषता बन गई है, लेकिन भारत में अभी भी कुछ राज्यों में दो दलीय व्यवस्था मौजूद है। राजस्थान और पंजाब उन राज्यों में कुछ ऐसे ही उदाहरण हैं जहाँ पर द्वि-दलीय व्यवस्था मौजूद हैं। यह उपखंड दो-दलीय व्यवस्था के बारे में है। ये उन राज्यों से भिन्न हैं जिनमें बहु-दलीय व्यवस्था है, जैसे कि यूपी. एवं बिहार। यहाँ पर जाति आधारित समूहों बहुदलीय व्यवस्था वाले राज्यों में अलग-अलग दल है, जैसे बी.एस.पी., एस.पी., आर. जे.डी., जे.डी.यू. इत्यादि। छोटी जातियों या एक ही जाति के छोटे दलों की उपस्थिति अस्तित्व नहीं है। तथापि, यहाँ पर भी कभी-कभी छोटे दलों का उदय देखा गया है। इस प्रकार इन राज्यों में मोटे तौर पर दो पक्षीय व्यवस्था रही है। दो दलीय व्यवस्था की उपस्थिति या बहु दलीय व्यवस्था की अनुपस्थिति का प्रमुख कारण राजनेताओं या सामाजिक समूहों/जातियों के नेताओं द्वारा अलग-अलग पार्टियों का गठन करना तथा सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं में इनके समूहों के हितों को संरक्षित रखना है। ये मुख्य दल ही दो दलीय व्यवस्था बनाते हैं। मुख्य दलों के भीतर गुटबाजी के अलावा उनके भीतर प्रतिस्पर्धा के परिणामस्वरूप प्रमुख दलों में विभाजन नहीं होता। और नई पार्टियों को इससे अलग होने की प्रेरणा मिलती है। राजस्थान में दोनों दलों काँग्रेस एवं भाजपा ने दो दलीय व्यवस्था का प्रतिनिधित्व किया। इनमें से प्रत्येक दल ने राजस्थान में 1990 के दशक के समय सरकारें बनाई। राजनीतिक तौर पर प्रभावशाली जातियाँ जैसे जाट, राजपूत और ब्राह्मणों को दोनों पार्टियों में समायोजित किया गया है। अन्य जातियाँ जैसे दलित और अति पिछड़ा वर्ग राज्य में राजनीतिक तौर पर वंचित जातियाँ हैं। यूपी. के विपरीत, वे अलग से दल बनाने में सक्षम नहीं हैं। हालांकि कुछ उच्च जाति और पिछड़े वर्गों के नेताओं में 1999 में अलग पार्टी (राजस्थान सोशल जस्टिस फोरम) बनाई जिसने काँग्रेस का विरोध किया राज्य में जाटों को ओ.बी.सी. में पहचान दिलाने के कारण किया था। यह पार्टी अपने अस्तित्व में आने के कुछ वर्षों में भीतर ही बंद हो गई। राज्य के कुछ क्षेत्रों जैसे सीकर, झुंझनू में सी.पी.आई. (एम) को समर्थन मिला (सिंह 2021)। पंजाब में, तीन पार्टियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की है, जिसे अकाली दल, काँग्रेस एवं बी.जे.पी. के नाम से जाना जाता है। अकाली दल को सिख समुदाय विशेषकर जाट सिख से समर्थन प्राप्त है। बी.जे.पी. के समर्थन का आधार ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में अधिक है। पंजाब की राजनीति में अकाली दल और बी.जे.पी. सितंबर 2020 तक, जब अकाली दल ने किसानों के मुद्दों पर भाजपा नीति राजग को छोड़ दिया, सहयोगी दल रहे हैं।

#### अभ्यास प्रश्न 2

- 1) 1990 के दशक से भारत में दलीय व्यवस्था की विशेषताओं की पहचान कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) कुछ राज्यों में छोटे दल या एक ही दल उभरे क्यों हैं, समझाइये।

.....

.....

.....

.....

.....

## 9.6 संदर्भ

बम्बवाल, के. आर. 1998, 'रीजनल पार्टिज इन इंडिया पोलिटिक्स' इन एस. भटनागर और प्रदीप कुमार (एड) *रीजनल पोलिटिकल पार्टिज इन इंडिया*, न्यू-दिल्ली एस प्रकाशन।

ब्रास, पॉल, आर, 1995, *द पोलिटिक्स ऑफ इंडिया सिंस इन डिपेंडेंस*, न्यू दिल्ली कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

चटर्जी, पार्था, 1998, 'इंट्रोडक्शन' इन पार्थ चटर्जी (एड.) *स्टेट एण्ड पोलिटिक्स इन इंडिया*, दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

दिवाकर, रेखा, 2017, '*पार्टी सिस्टम इन इंडिया*' (ऑक्सफोर्ड इंडिया पोर्ट इंट्रोडक्शन सीरीज, न्यू-दिल्ली (ओ.यू.पी.)।

हसन, जोया, 2002, 'इंट्रोडक्शन, कन्फ्लिक्ट, प्लूटोलिज्म एण्ड द कम्पीटिशन पार्टी सिस्टम इन इंडिया' जोया हसन (एड.) *पार्टिंग एण्ड पार्टी पोलिटिक्स इन इंडिया*, दिल्ली-ऑक्सफोर्ड।

होर्ट, हर्टमैन, 1971 *पोलिटिकल पार्टिज इन इंडिया*, मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन।

खरे, हरिश, 1998, *पार्टिज, नेशनल एण्ड रीजनल : इंस्टिट्यूशंस ऑफ गवर्नेंस*, पी.आर. चारी (एड.) इंडिया टवार्डस मिलेनियम, न्यू दिल्ली मनोहर।

मेनर, जेम्स, 1990, 'पार्टिज एण्ड द पार्टी सिस्टम' इन अतुल कोहली (एड.) *इंडियाज डेमोक्रेसी : एन एनालिसिस ऑफ वेंजिंग स्टेट सोसाइटी रिलेशंस* : प्रिंरुटन प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।

पाई-सुधा, 1990, *रीजनल पार्टिज एण्ड द इमर्जिंग पैटर्न ऑफ पोलिटिक्स इन इंडिया*, इंडियन जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइंस, जुलाई सितम्बर।

पालस्कार, सुहास 2003, 'द रीजनल पार्टिज एण्ड डेमोक्रेसी। रोमांटिक रेन्डेवोस ओर लोकलाइज्ड लेजिटिमेशन? इन अजय के. मेहरा डी.डी. खन्ना, गर्ट, डब्ल्यू. कनेक *पोलिटिकल पार्टिज एण्ड पार्टी सिस्टम*, न्यू दिल्ली सेज प्रकाशन।

सेज लारेंस, 2002, *फेडरलिज्म विदाउट ए सेंटर : द इंपैक्ट ऑफ पोलिटिकल एण्ड इकोनोमिक रिफॉर्म ऑन इंडियाज फेडरल सिस्टम*, दिल्ली विस्तार।

सिंह, जगपाल, 2021, *कास्ट, स्टेट एण्ड सोसाइटी : डिग्री ऑफ डेमोक्रेसी इन नोर्थ इंडिया*, लंदन एण्ड न्यूयार्क राउटलेज।

श्रीधरम ई. 2002, "द फ्रैगमेंटेशन ऑफ द इंडियन पार्टी सिस्टम, 1952–1999 सेवन कंपीटिंग एक्सक्लूज़िविटी" इन जोया हसन (एड.) *पार्टीज एण्ड पार्टी पोलिटिक्स इन इंडिया* दिल्ली ऑक्सफोर्ड।

सुब्रमनियन नरेन्द्र, 2002, "ब्रिगिंग सोसाइटी बैक इन: एथलिसिटी, पोपुलिज्म एण्ड प्लूलिज्म इन इंडिया", इन हसन जोया (एड.) *पार्टीज एण्ड पार्टी पोलिटिक्स इन इंडिया* – ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली पेज 397–427।

---

## 9.7 सारांश

---

राजनीतिक व्यवस्था से तात्पर्य ऐसे राजनीतिक दलों से है जो किसी देश में मौजूद है। भारत में राजनीति के संदर्भ में, किसी राज्य में पार्टी व्यवस्था वहाँ उपस्थित राजनीतिक दलों की संख्या को इंगित करती है। भारत में राज्य पार्टी व्यवस्था 1950 के दशक से बदल गई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रथम दो दशकों तक अखिल भारतीय स्तर पर और साथ ही राज्य स्तर पर एक ही पार्टी का प्रभुत्व था, वह थी कांग्रेस पार्टी। उस समय रजनी कोठारी ने कांग्रेस को एक व्यवस्था कहा था। 1950–1960 के दशकों के दौरान राज्यों में कांग्रेस पार्टी का ही प्रभुत्व था, यद्यपि कुछ राज्यों में कुछ गैर-कांग्रेसी दल भी मौजूद थी। 1960 के दशक के अंत तक कांग्रेस का पतन शुरू हो गया था और अगले दो दशकों में यानि, 1970–1980 के दशक में ये दलीय व्यवस्था राज्य दलीय व्यवस्था की विशेषता बन गई। विभिन्न राज्यों में दो या अधिक दलों का उदय हुआ। 1990 के दशक की अवधि में दलों का गुणन या विघटन देखा। इस अवधि में कई दलों का उदय हुआ। कई दलों ने एक जाति दल भी शामिल हैं। ऐसे दल उत्तर प्रदेश, बिहार, तमिलनाडु राज्यों में उपस्थित हैं। हालांकि बहुदलीय व्यवस्था भी एक प्रमुख विशेषता बन गई उस दौरान, लेकिन इस चरण के दौरान राज्य पार्टी व्यवस्था में भी दो दलीय व्यवस्था रही है।

---

## 9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

---

### अभ्यास प्रश्न 1

- 1) निम्नलिखित कारणों से कांग्रेस व्यवस्था में गिरावट आई। लोगों की जरूरतों को पूरा करने में नाकाम रहने पर कांग्रेस के खिलाफ आक्रोश था। यह आक्रोश भारत में आम चुनाव के प्रथम दशक के बाद खाद्य संकट के कारण देखने को मिला। गैर-कांग्रेसी दलों ने कांग्रेस के खिलाफ लोगों की समस्याओं के समाधान में असमर्थता के लिये लोगों को लामबंद किया। इसके अलावा, कांग्रेस के भीतर गुटबाजी भी प्रखर थी। यह कांग्रेस में आई गिरावट को दर्शाता है जो कि 1960 के दशक के अंत तक कई राज्यों में देखने को मिली।
- 2) भारतीय राज्यों में दलीय व्यवस्था की मुख्य विशेषता को दो दलीय व्यवस्था थी, जिसमें कांग्रेस भी एक दल था। कुछ दलों ने कांग्रेस के खिलाफ विरोध किया था उनके नेता ने 1960 के दशक तक कांग्रेस के सदस्य थे। इन दलों और नेताओं ने क्षेत्रीय आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व किया। लगभग तीन साल (1977–1980) तक कुछ विपक्षी दलों का विलय के कारण जनता पार्टी का गठन किया था। जनता पार्टी में विभाजन के बाद जनता पार्टी के विभिन्न गुटों ने

अलग-अलग नामों से पार्टियां बनाई। उदाहरण के तौर पर जनसंघ भारतीय जनता पार्टी बन गई।

राज्य दलीय  
व्यवस्थाए

## अभ्यास प्रश्न 2

- 1) 1990 के दशक से राज्य पार्टी व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ – पार्टियों के विघटन के तौर पर देखी जा सकती है। यह राज्यों में या पार्टियों की बढ़ती संख्या बहु-दलीय व्यवस्था की ओर कई इशारा करती है, हालांकि कुछ राज्यों में दो दलीय व्यवस्था विद्यमान थी। ऐसा पार्टियों के में अलग-अलग नेताओं के बीच आंतरिक प्रतिस्पर्धा के कारण होता है। अधिक दल बड़ी संख्या में विभिन्न समूहों को समायोजित कर सकते हैं।
- 4) छोटी पार्टियों का गठन आमतौर पर हाशिये पर रहने वाली जातियों के नेताओं द्वारा किया जाता है। उनके नेताओं को लगता है कि उन्हें मुख्य पार्टियों में उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलता है। यह उन्हें उनके नेतृत्व में पार्टियों के गठन के लिये प्रेरित करता है।



---

## इकाई 10 चुनावी राजनीति\*

---

### संरचना

- 10.0 उद्देश्य
- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 चुनावी राजनीति की व्याख्या
- 10.3 चुनावी राजनीति और लोकतांत्रिकरण
- 10.4 चुनावी राजनीति के तरीके (पैटर्न्स)
- 10.5 राज्यों के चुनावी मुद्दे
- 10.6 सारांश
- 10.7 संदर्भ
- 10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

---

### 10.0 उद्देश्य

---

यह इकाई राज्यों की चुनावी राजनीति से संबंधित है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह :-

- चुनावी राजनीति के अर्थ एवं क्षेत्र की व्याख्या कर सकेंगे,
- भारत में चुनावी राजनीति और लोकतंत्र के बीच संबंधों की चर्चा कर सकेंगे,
- राज्यों की चुनावी राजनीति के तरीकों की पहचान कर सकेंगे तथा
- चुनावी राजनीति के लामबंद होने के प्रमुख मुद्दों की चर्चा कर सकेंगे।

---

### 10.1 प्रस्तावना

---

चुनावी राजनीति का संबंध उस राजनीति से होता जो चुनावी के संदर्भ में होती है। यद्यपि चुनाव किसी विशेष समय में होते हैं, परंतु चुनावी राजनीति चुनावों से पूर्व ही शुरू हो जाती है। इस प्रकार, चुनावी राजनीति न केवल चुनावों के बारे में है परंतु, राजनीतिक दलों एवं नेताओं द्वारा जनता को लामबंद करने के तरीकों से भी संबंधित है। स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराना तथा समाज के विभिन्न समूहों से लोगों का चुनावों में भाग लेना लोकतंत्र की सफलता के प्रमुख मापदंड माने जाते हैं। भारत में, 1950 में संविधान के लागू होने के पश्चात् वयस्क मताधिकार को लागू करने के बाद 18 वर्ष या उससे अधिक उम्र के लोगों को चुनाव में अपना मत देने का अधिकार मिला तथा कुछ समय बाद वे चुनाव में प्रत्याशी भी बनकर चुनाव भी लड़ सकते हैं। सर्वप्रथम भारत 1951-52 के आम चुनाव में सभी वयस्कों को चुनाव में भाग लेने का मौका मिला था। उससे पहले भारत में सार्वभौम वयस्क मताधिकार का प्रावधान नहीं था। मताधिकार प्रमुख तौर पर प्रतिबंधित था। इसका तात्पर्य यह है कि वोट देने का अधिकार तथा चुनाव लड़ने का अधिकार कुछ ही वर्गों तक जिनके पास धन-दौलत

---

\* डॉ. सुधीर कुमार सुथार, एसिस्टेंट प्रोफेसर, सेंटर फॉर पालिटिकल स्टडीज, सामाजिक विज्ञान संकाय, जे.एन.यू. नई दिल्ली - 110067

थी तथा जिन्होंने शैक्षिक योग्यताओं के लिये पैसा दिया है, सीमित था। लोगों की भागीदारी के लिये दो प्रकार के चुनाव होते हैं – एक प्रत्यक्ष चुनाव तथा दूसरा अप्रत्यक्ष चुनाव। प्रत्यक्ष चुनाव में जनता अपने प्रतिनिधि प्रत्यक्ष रूप से चुनती है, जबकि अप्रत्यक्ष चुनाव में जनता अप्रत्यक्ष तौर पर अपने प्रतिनिधि चुनती है। जनता अखिल भारतीय स्तर पर एम.पी. राज्य स्तर पर एम.एल.ए. था एम.एल.सी. का चुनाव करती है। अप्रत्यक्ष चुनाव राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, या राज्य सभा के सदस्यों के लिये किया जाता है। आप इस इकाई में भारतीय राज्यों में प्रत्यक्ष चुनाव के बारे में पढ़ेंगे। भारत में चुनावी राजनीति का संबंध तीन संस्थाओं में अपने प्रतिनिधि चुनने के लिये होता है। ये हैं – लोकसभा, विधानसभा तथा स्थानीय निकाय जैसे पंचायती राज संस्थाएँ एवं नगर पालिका, इत्यादि। भारत में 1951 से 1971 के बीच लोकसभा और विधान सभाओं के चुनाव साथ-साथ हुए थे। 1971 से, लोकसभा और विधानसभा का चुनाव अलग-अलग करवाया जाता है। वास्तव में अब लोकसभा एवं विधानसभा के चुनावों की अवधि लगातार बढ़ती जा रही है, खासकर 1990 से। चुनाव उदारवादी संवैधानिक लोकतांत्रिक प्रणाली का आधार स्तंभ है। भारत में संघीय प्रणाली को शासन के तौर पर अपनाया गया था और एक चुनाव आयोग का भी प्रावधान किया गया जो कि भारत में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव कराने के लिये जिम्मेदार है। भारतीय संविधान के भाग 15 में संसद के चुनावों से संबंधित प्रावधान किये गये हैं तथा विधान सभा एवं विधान परिषद के चुनावों का भी प्रावधान है। अनुच्छेद 324 के अनुसार, चुनाव आयोग संघ एवं राज्यों के स्तर पर चुनावों के प्रबंध के लिये जिम्मेदार है। अनुच्छेद 170 के अंतर्गत राज्यों की विधान सभाओं के चुनावों के प्रावधान किये गये हैं।

## 10.2 भारतीय राज्यों में चुनावी राजनीति की व्याख्या

भारत में चुनावी राजनीति, दलीय प्रणाली और नेतृत्व से संबंधित साहित्य काफी मात्रा में उपलब्ध है। चुनावों के ऊपर अध्ययन या शोध करने को चुनाव विश्लेषण (सैफॉलोजी) कहते हैं। यह साहित्य भारत में चुनावी राजनीति के वृहत् पैटर्न्स को दर्शाता है। जैसा कि आपने इकाई संख्या एक में पढ़ा होगा, भारत में राज्य राजनीति एक विषय के रूप में काफी लोकप्रिय बन गई है, खासकर 1960 में कांग्रेस के पतन के बाद से है और आपने इकाई संख्या 9 में भी पढ़ा होगा, उस समय तक काफी राज्यों में राज्य स्तरीय दलों का भी उदय हो गया था। इनका गठन कुछ महत्वपूर्ण नेताओं के द्वारा किया गया था, जिनका उस राज्य में जनाधार बहुत मजबूत था। इनमें से कुछ नेता पहले कांग्रेस के सदस्य थे। क्षेत्रीय नेताओं एवं पार्टियों का उदय उदय राज्यों में सामाजिक समूहों के उदय के कारण हुआ था। उनकी आकांक्षाएँ विशेषकर क्षेत्र, जाति, भाषा, संस्कृति से संबंधित थी। ऐसी पार्टियाँ क्षेत्रीय या राज्य स्तरीय थी, जिनकी राष्ट्रीय राजनीति में भी 1990 के दशक के बाद महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है।

इनमें से कुछ नेताओं ने राष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा नीति निर्माण में भी अपनी अहम भूमिका निभाई थी। इस संदर्भ में चरण सिंह का उदाहरण बहुत महत्वपूर्ण है। इन्होंने राजनीति को प्रभावित करने, नीति निर्माण, तथा अपने गृह राज्य में नेतृत्व भी प्रदान किया था। चौधरी चरण सिंह ने अपने राज्य उत्तर प्रदेश में 1960 के दशक तक निर्णायक भूमिका निभाई, और विशेषकर 1977-79 के जनता पार्टी के शासन काल में उन्होंने केन्द्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। वे कुछ समय तक भारत

के प्रधान मंत्री भी रहे थे। जनता पार्टी में चौधरी चरण सिंह जैसे नेताओं तथा समाजवादियों ने नीति निर्माण में प्रमुख भूमिका निभाई थी, तथा उन्होंने केन्द्र सरकार की संस्थाओं में आरक्षण देने के सवाल को भी उजागर किया था। उनके प्रयासों के कारण ही 1978 में जनता पार्टी सरकार ने मंडल आयोग की नियुक्ति की थी। उस समय मोरारजी देशाई भारत के प्रधानमंत्री थे। यह प्रवृत्ति राज्यों में भी शुरू हो गई और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण की माँग उठने लगी। परिणामस्वरूप, यूपी. तथा बिहार में सरकारों ने सरकारी नौकरियों में ओ.बी.सी. वर्गों के लिये आरक्षण का प्रावधान किया गया। 1990 दशक से राज्य स्तरीय दलों एवं नेताओं में बढ़ोतरी देखी गई। बी.एस.पी. की कांशीराम द्वारा स्थापना विशेषकर इसके उत्तर भारत के राज्यों में व भाजपा के विस्तार ने सामाजिक न्याय और धर्म की भूमिका को चुनावी राजनीति में महत्ता मिली है। इसके अलावा जैसा कि आपने इकाई संख्या 9 में पढ़ा होगा, भारत के राज्यों में एक से अधिक पार्टियाँ विद्यमान हैं। पार्टियों की संख्या द्वारा ही पार्टियों के प्रकारों का जाना जाता है। तथा भारत में दो प्रकार की दलीय व्यवस्था है – दो दलीय व्यवस्था या बहु-दलीय व्यवस्था। चुनावी प्रतिस्पर्धा ही चुनावी राजनीति का एक महत्वपूर्ण भाग होती है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि राज्यों में चुनावी राजनीति राज्य स्तरीय या क्षेत्रीय दलों तक ही सीमित नहीं है। इसमें राष्ट्रीय दल भी हिस्सा लेते हैं। इस प्रकार, चुनावी राजनीति में राज्य और राष्ट्रीय दोनों ही दल भाग स्वतंत्र रूप से या फिर गठबंधन करके भाग लेते हैं।

भारत में 1960 के दशक से चुनावों का अध्ययन किया जा रहा है। भारत में चुनावों के अध्ययन के लिये मुख्य रूप से तीन प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जा रहा है – 1) शोध सर्वेक्षण, 2) परिवेश विश्लेषण, 3) फील्ड वर्क (सर्वेक्षण)। रजनी कोठारी और मायरन वीनर ने सर्वेक्षण आधारित चुनाव विश्लेषण को सही माना था। 1960 के दशक के बाद से चुनाव अध्ययन कई चरणों में होकर गुजरा है। लगभग दो दशकों के अंतराल के बाद से 1984 में चुनाव अध्ययन फिर से लोकप्रिय हो गया था जब डेविड बटलर एवं प्रणय रॉय ने 1984 (सिंह 2021, पाठ 4) के लोक सभा चुनावों का विश्लेषण किया था। विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न राज्यों में राजनीति का अध्ययन किया। उसके बाद से राजनीति का अध्ययन करने का प्रयास जारी रहा। ये अध्ययन राज्य की राजनीति और चुनाव के विभिन्न पहलुओं पर केन्द्रित थे, जैसे चुनाव पार्टियाँ, नेतृत्व तथा लामबंदी का तरीका। 1990 के दशक के बाद, चुनाव अध्ययन और अधिक लोकप्रिय हो गया था। भारत में चुनावी अध्ययन करने में सी.एस.डी.एस. (विकासशील समाज अध्ययन केन्द्र) के अग्रणी भूमिका निभाई है। इसके अलावा, व्यक्तिगत विद्वानों द्वारा भी चुनाव अध्ययन संचालित किया जाता है। चुनाव अध्ययन के अलावा, मतदान पर जनमत सर्वेक्षण भी विश्लेषण का विषय है। चुनाव अध्ययन और जनमत सर्वेक्षण अलग-अलग हैं। चुनाव अध्ययन का दायरा व्यापक है जो सामाजिक आर्थिक कारकों के साथ चुनावी प्रक्रिया से या राजनीतिक कारक या संदर्भ से संबंधित है। जबकि, जनमत सर्वेक्षण मतदाताओं की राय जानने के लिये सीक्षित है। यह चुनाव में मतदान एवं उनके विकल्प तक सीमित है।

---

### 10.3 चुनावी राजनीति और लोकतांत्रिकरण

---

बीसवीं सदी के अंतिम दशक के बाद से भारत में चुनावी राजनीति के दो महत्वपूर्ण घटनाक्रम हुए। प्रथम, समाज के विभिन्न वर्गों की मतदान में भागीदारी बढ़ गई। इन वर्गों में समाज के ज्यादातर हाशिये के तबके शामिल थे, जैसे महिला, आदिवासी,



दलित, ओ.बी.सी. और ग्रामीण वर्ग। एक सतर्क चुनाव आयोग और मतदान के महत्व के विषय में राजनीतिक चेतना के उदय ने चुनावों में लोगों की भागीदारी को बढ़ावा दिया है। मूलतः राज्य में लोगों के प्रतिनिधियों की प्रोफाइल में भी उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं। पहले के विपरीत जब लोगों के प्रतिनिधि ज्यादातर आर्थिक और सामाजिक रूप से अधिक विशेषाधिकार समूहों से संबंधित थे। पिछले कुछ वर्षों में उनके स्वरूप में रचना अधिक विविधता आई है। उच्च जातियों के अलावा, अब ओ.बी.सी., दलित, महिलाओं के प्रतिनिधित्व में बढ़ोतरी हुई है। क्रिस्टोफ जैफरलो और संजय कुमार द्वारा संपादित किये गये विभिन्न लेखों (2009) “राइज ऑफ प्लेबियंस, द चंजिंग फेस ऑफ इंडियन लेजिसलेटिव असेंबलिय” में दिखाया गया है कि विभिन्न राज्यों के लोगों के प्रतिनिधियों के जाति, लिंग, आयु, व्यवसाय इत्यादि के संदर्भ में बदलाव आया है। प्रतिनिधियों में प्लेबियन (आम आदमी) का बड़ा हिस्सा है। हालांकि, भारत के राज्यों में इस पैटर्न में भिन्नता है। कुछ पर्यवेक्षकों ने तर्क दिया है कि भारत में चुनावी राजनीति ने लोकतंत्रीकरण में वृद्धि की है। आमतौर पर कमजोर वर्ग, दलित, ओ.बी.सी., महिलाएँ, धार्मिक अल्पसंख्यक की चुनावी राजनीति में बढ़त लोकतंत्रीकरण का प्रतीक है। बीसवीं सदी के पिछले दो दशकों में उनकी चुनावों में भागीदारी में वृद्धि हुई है। योगेन्द्र यादव ने (2000) में अपने लेख इन वर्गों की चुनाव में भागीदारी की बढ़त को में इसे “दूसरे लोकतांत्रिक उभार” के रूप में पहचाना है।

#### अभ्यास प्रश्न 1

1) चुनावी राजनीति का अर्थ एवं क्षेत्र की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में चुनावी राजनीति और लोकतंत्र के बीच संबंधों की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

### 10.4 चुनावी राजनीति के तरीके (पैटर्न्स)

पिछले कुछ दशकों में भारतीय राज्यों के चुनावों में बदलाव देखा गया है। यह बदलाव चुनावी राजनीतिक गठबंधन क्षेत्रीय मोर्चों के उदय, राज्य स्तर के नेताओं राष्ट्र स्तर की राजनीति में बढ़ती भूमिका में दिखाई दे रहा है। कुछ राज्यों में जैसे कि यूपी., बिहार, तमिलनाडु इसके उदाहरण हैं। इसके साथ-साथ धन एवं अपराध की भूमिका भी चुनावी राजनीति बढ़ती जा रही है। कुछ उदाहरण इन पैटर्न को चित्रित किया जा सकता है। बसपा ने विधान सभा चुनाव में जीत हासिल करने के बाद 1993-1995 में

समाजवादी पार्टी के साथ गठबंधन किया था और सरकार बनाई। 1993 के तथा इसने भाजपा की मदद से 1995 और 2007 के बीच चार बार सरकारों का गठन किया था। नार्थ-ईस्ट भारत में, क्षेत्रीय दलों ने उत्तर पूर्व डेमोक्रेडिक अलायंस (नेडा) का गठन किया। छोटे दलों जैसे अपना दल और सुहेलदेव भारतीय समाज पार्टी ने पूर्वी उत्तर प्रदेश में राष्ट्रीय दलों जिनमें भाजपा भी शामिल है अथवा क्षेत्रीय दलों के साथ गठबंधन करके सत्ता में भागीदारी के लिए सौदेबाजी की। उपेन्द्र कुशवाहा के नेतृत्व में राष्ट्रीय लोक समता पार्टी (आर एल एस पी) या जीतन राम मांझी के नेतृत्व हिन्दुस्तान आवागम मोर्चा (हम) ने बिहार में जे.डी.यू. एवं राजद जैसे बड़े दलों के साथ सौदेबाजी की। आमतौर पर ऐसी पार्टियाँ सामाजिक और सांस्कृतिक प्रतीकों और सामाजिक न्याय की मान्यता के लिए दबाव बनाती हैं। कई तुलनात्मक रूप से छोटी पार्टियाँ जैसे कि ए.डी.एम.के., पी.एम.के., एम.डी.एम.के., या एम.आई.एम.के. जिन्हें विशेष जाति के रूप में पहचाना जाता है, ने तमिलनाडु में चुनावी राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। राजनीतिक दलों एवं व्यावसायिक समूहों के बीच भी एक गठबंधन देखा गया है। राजनीतिक दलों को चुनाव लड़ने के लिये पैसे चाहिये और राजनीति दल व्यावसायिक वर्ग उनके व्यवसाय में मदद करते हैं यदि वे चुनाव जीतने के बाद सरकार बनाते हैं (बारू 2021)। धन और अपराध भी भारत में चुनावी राजनीति को प्रभावित करते हैं (वैशणव, 2017)। जैसा आप अगले भाग में पढ़ेंगे, केवल ये ही मुद्दे महत्वपूर्ण नहीं हैं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक भी चुनावी राजनीति को प्रभावित करते हैं।

## 10.5 राज्यों के चुनावी मुद्दे

चुनावों में विभिन्न प्रकार के मुद्दे लोगों के मत का निर्धारण करते हैं। ये मुद्दे विभिन्न प्रकार के हैं – आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक। इन मुद्दों की संख्या असीमित हैं। हालांकि इनमें कुछ ऐसे मुद्दे भी हैं जो लोगों के दैनिक जीवन को भी प्रभावित करते हैं। इनमें से रोजगार की उपलब्धता, मूल्य वृद्धि या महंगाई, स्कूल तथा अस्पताल, रोड एवं यातायात, सुविधाएँ, सामाजिक न्याय, कल्याणकारी कार्यक्रम, विभिन्न सामाजिक समूहों के सामाजिक धार्मिक या सांस्कृतिक पहचान कानून एवं व्यवस्था इत्यादि मुद्दे शामिल हैं। विभिन्न राजनीतिक दल और नेता इन मुद्दों पर लोगों को लामबंद करते हैं। अपने प्रचार में ये दल अपने मुद्दों को लोगों तक पहुँचाते हैं तथा अपने विरोधियों की आलोचना भी करते हैं। दलितों के साथ पहचानी जानी वाली पार्टियों के उदय के साथ, उत्तर में ओ.बी.सी., और 1990 के दशक से भाजपा और दक्षिण भारत में ऐसी पार्टियों की उपस्थिति विशेष तमिलनाडु में पहले से उपस्थिति थी ने अखिल भारतीय स्तर पर आरक्षण या ओबीसी आरक्षण में विभाजन जाति-संबंधी न्याय के मुद्दों विभिन्न जातियों से जुड़े सांस्कृतिक प्रतीकों की मान्यता और धर्म आधारित मुद्दों पर प्रमुख रूप से चुनावी लामबंदी की। बी.जे.पी. ने अखिल भारतीय स्तर पर धार्मिक पहचान बनाने का निरंतर प्रयास किया है। बी.जे.पी. के सांस्कृतिक विकास के एजेन्डे में पिछले दिनों में एक बड़ा बदलाव देखा गया है। एक अखिल भारतीय पहचान बनाने के उद्देश्य से चुनावी तौर पर इसमें विभिन्न सामाजिक समूहों को समायोजित करने के लिए लचीलापन दिखाया है। भाजपा का मत प्रतिशत बढ़ने के पीछे पार्टी की राज्यों में रणनीति की सफलता के रूप में देखा जा सकता है। यद्यपि जो मुद्दे ऊपर दर्शाये गये हैं वे सब चुनावी राजनीति के समान मुद्दे हैं लेकिन कुछ विशेष क्षेत्रों में ये मुद्दे चुनावी माहौल में ज्यादा अहम हो जाते

हैं। उदाहरण के तौर पर उत्तर पूर्वी भारत में, क्षेत्रीय और नृजातिय पहचान वहाँ पर प्रमुख चुनावी मुद्दे होते हैं। इसी प्रकार, नये राज्यों के गठन के पहले, उत्तराखंड, झारखंड, या तेलंगाना, इन राज्यों के गठन की माँग लामबंदी का प्रभुत्व मुद्दा होता है। राजनीतिक संदर्भ के अनुसार पार्टियों और नेताओं ने या तो इन मुद्दों का समर्थन, किया या फिर उनका विरोध किया। क्षेत्रीय पहचान से संबंधित माँगों में, कुछ क्षेत्रों ने यह आरोप लगाया कि उनके क्षेत्र के साथ भेदभाव हुआ है। उनका कहना है कि अन्य क्षेत्रों की तुलना में केन्द्र या राज्य सरकारों द्वारा भेदभाव किया गया है, तथा उनकी समस्याएँ तभी हल हो सकती हैं जब उन्हें राजनीतिक स्वायत्तता प्राप्त हो। भारत में इस प्रकार की माँग समय-समय पर उठती रहती है तथा कई अवसरों पर ये मांगे चुनावों में भी प्रमुख मुद्दा बन जाती है। कुछ वर्षों में सोशल मीडिया की भूमिका बढ़ जाने के कारण सरकार अपनी नीतियों को जनता तक पहुंचाने में सफल रही है। सरकार अखबारों में विज्ञापन के माध्यम से और प्रिंट मीडिया या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यम से जनता में चेतना जागृत करती है। इसने राजनीतिक दलों के चुनाव प्रसार को और अधिक चुनौती पूर्ण बना दिया है। 1990 से पहले के दशक के विपरीत, अब लोगों के पास सूचना प्राप्ति के अच्छे साधन मौजूद हैं। अब वे सरकार की नीतियों और क्रियान्वयन तथा विपक्ष की भूमिका के बारे में पता कर सकते हैं। इस इकाई में आप चुनावी राजनीति और मुद्दों के बीच संबंधों के कुछ उदाहरणों के बारे में पढ़ेंगे। ये उदाहरण इनके विस्तृत तरीकों की चर्चा के बारे में होंगे। कुछ चुनावों में आर्थिक सुधारों से उभरे मुद्दों जो कि 1991 के बाद से शुरू हुए थे, इनका भी राज्य की राजनीति में परिलाक्षण हुआ है। विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं ने राज्यों में अपने आर्थिक विकास और विकास के मॉडल को अपनाया। विभिन्न नेताओं ने विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक विकास का ध्यान दिया। भारत में विभिन्न दलों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में कई प्रकार की नीतियों के लागू किया। कुछ राज्यों में आर्थिक सुधार के कारण हुए परिवर्तन भी चुनावी मुद्दा बन गया था।

कुछ लोगों का मानना है कि आर्थिक सुधारों के कारण राज्य की भूमिका कमी आई है। जिसके कारण कल्याणकारी नीतियों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। और कुछ लोगों का मानना है कि इससे निजी क्षेत्र पर से प्रतिबंध को हटा दिया जायेगा। विभिन्न राज्यों के मुख्य मंत्रियों ने इसे अपने राज्यों में निजी निवेश को आकर्षित करने की रणनीति बनाई। इसमें एफ.डी.आई. या विदेशी पूँजी, निवेश को बढ़ावा देना भी शामिल हैं। उन्होंने अपने आर्थिक विकास मॉडल को अपनाने का प्रयास किया। विभिन्न नेताओं ने विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक वृद्धि पर फोकस किया। चंद्रबाबू नायडू ने हैदराबाद को सॉफ्टवेयर का हब बनाने का प्रयास किया। एस.एम. कृष्णा ने बेंगलूर को एक नये सर्विस सेक्टर का केन्द्र बनाने का प्रयास किया तथा गुजरात में नरेन्द्र मोदी, जब मुख्यमंत्री थे तब उन्होंने गुजरात में विदेशी निवेश को आमंत्रित किया। विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) के लिए जमीन अधिग्रहण करने के लिये निजी क्षेत्र को आकर्षित करने की आवश्यकता बढ़ गई थी। कुछ राज्यों में, जमीन अधिग्रहण भी चुनाव का प्रमुख मुद्दा बन गया था। यहाँ जमीन अधिग्रहण के चुनावी राजनीति के मुद्दा बनने के दो प्रमुख उदाहरण हैं : पहला, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जमीन अधिग्रहण और दूसरा पश्चिम बंगाल के नंदीग्राम में। इन दोनों मामलों में वहाँ की सरकारों द्वारा जमीन अधिग्रहण पर राजनीति होने लगी। उत्तर प्रदेश में, 2004 में मुलायम सिंह यादव की सरकार ने दादरी (गोतम बुद्ध नगर में पावर प्लांट लगाने के लिये जमीन का अधिग्रहण किया था तथा 2007 में मायावती की सरकार ने यमुना एक्सप्रेस के लिये जमीन का अधिग्रहण

किया था (सिंह, 2020)। इन दोनों सरकारों द्वारा जमीन अधिग्रहण को 2007 और 2008 के विधानसभा चुनावों में प्रमुख मुद्दा बन गया था। इसी प्रकार पश्चिम बंगाल में, 2011 में वामपंथी सरकार द्वारा नैनो फैक्टरी लगाने के लिये जमीन अधिग्रहण करना भी विधान सभा चुनावों का प्रमुख मुद्दा था। यह मुद्दा काफी बड़ा कारण था जिसने वामपंथ को पश्चिम बंगाल में हार का सामना करना पड़ा तथा टी.एम.सी. को जीत मिली थी बाद में उसने सरकार बनाई। 1990 में किसानों ने डंकल प्रस्ताव का विरोध किया था जिसने कृषि क्षेत्र में सुधार लाने का प्रयास किया था।

भारत में आर्थिक सुधारों को मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के साथ शुरू किया गया था। इसने ओ.बी.सी. वर्गों की पहचान की माँग को आगे बढ़ाया ताकि कुछ जातियों को आरक्षण का फायदा मिल सके या कल्याणकारी नीतियों का लाभ मिल सके। इन जातियों में हरियाणा और राजस्थान के जाट, महाराष्ट्र और गुजरात के मराठा तथा पटेल शामिल हैं। राजस्थान में गुर्जरों की एस.टी. वर्ग में शामिल करने की माँग, उत्तर प्रदेश में अति पिछड़ा वर्ग की ओ.बी.सी. कोटे को विभिन्न उप-जातियों में बाँटने की माँग भी शामिल हैं। ये मुद्दे चुनाव प्रचार का प्रमुख बिंदु बन गये थे। वास्तव में 1999 के लोकसभा चुनावों में राजस्थान में जाटों द्वारा ओ.बी.सी. में शामिल करने की माँग न केवल राजस्थान बल्कि उत्तर प्रदेश एवं दिल्ली में उनके ओबीसी की पहचान के रूप में परिणित हुई।

## अभ्यास प्रश्न 2

- 1) भारतीय राज्यों में चुनावी राजनीति के पैटर्न (तरीकों) को समझाइये।

.....

.....

.....

.....

.....

- 2) चुनावी राजनीति के प्रमुख मुद्दों के महत्व की व्याख्या कीजिये।

.....

.....

.....

.....

---

## 9.6 संदर्भ

बारू, संजय (2021), *इंडियाज पॉवर इलिट: कास्ट, व्यवसाय एण्ड कल्चरल रिवोल्यूशन*, पेंग्विन विकिंग।

जौफरलो, सी. एण्ड कुमार, एस. (एड.), (2009) *राइट ऑफ प्लेबियंस, द चेंजिंग फेस ऑफ इंडियन लेजिसलेटिव असेंबिलज*, राउटलेज, न्यू दिल्ली।

पालसीकर, सुहास, (2014) *पार्टी कम्पीटीसन इन इंडियन स्टेट : इलेक्शरल पोलिटिक्स इन पोस्ट कांग्रेस पोईनारी*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली।

सिंह, जगपाल (2021), *कास्ट, स्टेट एण्ड सोसाइटी: डिग्रीज ऑफ डेमोक्रेसी इन नोर्थ इंडिया*, राउटलेज लंदन, न्यूयार्क।

सिंह, जगपाल (2020), “कांटेक्चुरांजिंग लैंड क्वस्चन इन ए ग्रीन रिवोल्यूशन एरिया : एग्रेरियन ट्रॉसफोरमेशन एण्ड एग्रेरियन पोलिटिक्स इन वैस्टर्न उत्तर प्रदेश” इन मिश्रा दीपक एंड नायक प्रदीप (एड.) *लैण्ड एण्ड लावलीटुड इन निओलिबरल इंडिया, पालगेव मैकमिलन सिंगापुर*।

वैष्णव, मिलान, (2011) *व्हेन, क्राइम प्लेन, मनी एण्ड मसल इन इंडियन पोलिटिक्स*, हार्पर कोलिन न्यू दिल्ली।

वाष्णेय, आशुतोष, (2013) *बैटल्स हॉफ-वॉन, इंडियाज इम्प्रोबेबल डेमोक्रेसी पेग्विन/बिकिंग*।

यादव, योगेन्द्र (2000), “अंडरस्टैंडिंग सेकंड डेमोक्रेटिक अपसर्ज : ट्रेंड्स ऑफ बहुजन पार्टिसिपेशन इन इलेक्टोरल पोलिटिक्स इन द 1990 ज इन फ्रांसिस, आर. फ्रेंकिल (एड.) *ट्रॉसफोमिंग इंडिया: सोशल एण्ड पोलिटिकल डायनेमिक्स ऑफ डेमोक्रेसी*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू दिल्ली पेज 120–45।

## 9.7 सारांश

चुनाव लोकतंत्र का महत्वपूर्ण पहलू हैं। यह वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से लोग अपने प्रतिनिधियों को चुनते हैं और वे विधायी निकायों में निर्णय निर्माण प्रक्रिया में हिस्सा लेते हैं। स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव स्वस्थ लोकतंत्र का प्रतीक है। भारत में, वयस्क मताधिकार का प्रावधान है, अर्थात् जिस व्यक्ति की उम्र 18 साल से अधिक हो वह वोट देने का अधिकार रखता है। चुनाव एक विश्लेषण का विषय है जिसमें चुनाव का अध्ययन किया जाता है, उसे हम चुनाव विश्लेषण (सैफोलॉजी) कहते हैं। भारत में चुनावी अध्ययन 1960 दशक के बाद से कई चरणों में होकर गुजरा है। ये अध्ययन 1990 दशक के बाद से और अधिक लोकप्रिय हो गये हैं, तथा कई संस्थाएँ इसमें शामिल हैं। पिछले कुछ वर्षों में समाज के कमजोर तबकों का खासकर दलितों, महिलाओं, आदिवासी का चुनावी राजनीति में भागीदारी बढ़ी है। इससे कुछ विद्वानों का मानना है कि देश में लोकतांत्रिकरण की प्रक्रिया मजबूत हुई है। हालांकि कई अन्य मुद्दे भी हैं जो कि प्रत्यक्ष तौर पर लोगों से संबंधित हैं। ये मुद्दे प्रायः राजनीतिक दलों द्वारा उठाये जाते हैं, ये मुद्दे चुनावी अभियान का भी हिस्सा बन जाते हैं। इन मुद्दों में हम सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक रोजगार, मूल्य वृद्धि, विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य राजनीतिक प्रतिनिधित्व या सामाजिक न्याय शामिल हैं। लेकिन ये मुद्दे चुनाव में अलग-अलग तरह से इस्तेमाल होते हैं तथा इन मुद्दों का चुनावी परिणाम में भी असर दिखाई देता है।

## 10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

### अभ्यास प्रश्न 1

- 1) चुनाव वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से लोग अपने प्रतिनिधियों को विधायी निकायों में चुनते हैं। यह वह हथियार है जिसके माध्यम से लोग अपने अधिकारों का प्रयोग करके राजनीतिक दलों या नेताओं से अपनी माँगों को पूरा करने का प्रयास करते हैं। चुनावों में लोगों के पास अपने विभिन्न नेताओं को चयन करने

का विकल्प होता है। चुनावी राजनीतिक का क्षेत्र काफी विस्तृत होता है। इसमें जनता को लामबंद करके चुनावों में वोट देने और विभिन्न नेताओं में और पार्टियों में प्रतिस्पर्धा भी शामिल है। इसमें लोगों के मुद्दे और उनकी समस्याएँ भी शामिल हैं जो चुनावी परिणामों पर भी प्रभाव डालते हैं।

- 2) विद्वानों का तर्क है कि चुनावों में जनता की भागेदारी भारत में लोकतंत्र की सफलात का प्रतीक है। पिछले कुछ वर्षों में देश में आम लोगों की चुनावों में भागीदारी बढ़ी है। इसमें 1990 दशक तेजी से वृद्धि देखी गई। उसके बाद से समाज के कमजोर तबकों जैसे कि दलित, ओ.बी.सी., महिलाएँ, आदिवासी की भी भागीदारी बढ़ गई है। इसने भारत में लोकतांत्रिक प्रक्रिया को और मजबूत किया है।

## अभ्यास प्रश्न 2

- 1) चुनाव एक विस्तृत प्रक्रिया है जिसमें न केवल मतदान बल्कि इससे संबंधित सभी पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार के अव्ययव में चुनावी राजनीति को कुछ निश्चित पैटर्न को समझने में सहायता मिलती है। इनमें से कुछ पैटर्न जो उभर कर सामने आये हैं वे इस प्रकार हैं। कमजोर वर्गों की भागीदारी में बढ़ोतरी, राज्यों में दलों एवं नेताओं के बीच प्रतिस्पर्धा, चुनाव पूर्व एवं चुनाव बाद गठबंधन बनाना, तथा जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा जैसे मुद्दों का चुनावों में अहम भूमिका।
- 2) चुनावों में लोगों की माँग एवं मुद्दे राजनीतिक लामबंदी का केन्द्र बिन्दु हैं। ये मुद्दे सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक पहलुओं से संबंधित हैं, हालांकि चुनावों में अन्य मुद्दे भी महत्वपूर्ण होते हैं। लेकिन प्रचार के दौरान कुछ मुद्दे अन्य मुद्दों से अति महत्वपूर्ण बन जाते हैं। यह राजनीतिक संदर्भ पर निर्भर करता है कि कौन से मुद्दे ज्यादा महत्व के होते हैं। इन मुद्दों की महत्ता विभिन्न क्षेत्रों से विभिन्न होती है। लेकिन इन मुद्दों के महत्वपूर्ण होने के बावजूद इनका प्रभाव चुनावों में हमेशा नहीं होता है।

---

## इकाई 11 नेतृत्व\*

---

### संरचना

- 11.0 उद्देश्य
- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 नेहरूवादी काल के दौरान नेतृत्व (1950 दशक से 1960 दशक के मध्य तक)
- 11.3 राज्य-स्तरीय नेतृत्व का उदय (1960–1980 के दशक)
- 11.4 1990 दशक से नेतृत्व
- 11.5 महिला नेतृत्व
- 11.6 संदर्भ
- 11.7 सारांश
- 11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

---

### 11.0 उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- भारत में नेतृत्व के अर्थ एवं उसके महत्व को समझ सकेंगे,
- भारतीय राज्यों में नेतृत्व की विशेषताओं की पहचान करा सकेंगे,
- स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के वर्षों में नेतृत्व की प्रकृति में परिवर्तन की चर्चा कर सकेंगे, और
- नेतृत्व के उदय की प्रक्रिया को समझा सकेंगे।

---

### 11.1 प्रस्तावना

---

लोकतंत्र में नेतृत्व राजनीतिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण भाग होता है। यह कई प्रकार की भूमिका निभाता है। नेतृत्व लोगों के हितों की बात करता है, उनके लिए नीतियां बनाता है, उन्हें वैचारिक धरातल प्रदान करता है, उन्हें लाभबंद करने के लिये रणनीति तैयार करता है, तथा विभिन्न स्तरों पर चुनी हुई निकायों में प्रतिनिधित्व करता है। एक ही नेता द्वारा ये कार्य को किये जा सकते हैं। या इनमें अलग-अलग नेताओं द्वारा अलग-अलग भूमिकाएँ निभाई जा सकती हैं। कुछ नेता औपचारिक रूप से एक पार्टी या संस्था से जुड़े नहीं होते हैं। वे लोगों को उस तरह से नेतृत्व प्रदान करते हैं कि उन्हें राजनीतिक दल बनाने की जरूरत नहीं होती। भारत जैसे विविधता बहुसांस्कृतिक समाज में ऐसे नेता हैं जो विभिन्न समूहों का नेतृत्व करते हैं जैसे जाति, भाषा, क्षेत्र, लिंग या धर्म, इत्यादि। उनका ज्यादातर ध्यान ऐसे मुद्दों पर होता है जो विशिष्ट समूह को प्रभावित करते हैं। हालांकि वे राजनीतिक दल बना सकते हैं या चुनाव लड़ सकते हैं, सामान्यतया वे विशेष समुदाय के नेता होते हैं। यह इकाई समुदायों के नेतृत्व से संबंधित नहीं है, जो कि विशेष रूप से समुदायों आंतरिक

---

\* अपर्णा विजयन, राजनीति विज्ञान संकाय, महाराजा सायाजिराव यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ौदा, वदोदरा।

मामलों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। बल्कि यह उस नेतृत्व से संबंधित है जो राजनीतिक संस्थानों से संबंधित है – जैसे कि पी.एम., सी.एम., या एम.एल.ए., राजनीतिक दलों के नेता, या फिर सामाजिक/राजनीतिक आंदोलनों के नेता। लोकतांत्रिक या अधिनायकतावादी राजनीतिक व्यवस्था के विपरीत, लोकतंत्र में जो नेता शासक दल से नहीं होते हैं उन्हें विपक्ष के रूप में स्वीकारा जाता है। वे शासकीय नेतृत्व को नीतियों में सुधार कर उन्हें और अच्छा बनाने में मदद करते हैं। इस इकाई में, आप विभिन्न प्रकार के नेतृत्व के महत्वपूर्ण पहलुओं के बारे में पढ़ेंगे: मुख्य कार्यपालिका जैसे कि मुख्यमंत्री, जननेता, करिश्माई नेतृत्व, चुने हुए प्रतिनिधी। यहां यह बात ध्यान देने की है कि, भारत में बड़ी संख्या में नेता हैं। इनका एक साथ व्यक्तिगत तौर पर अध्ययन करना संभव नहीं है। इसलिये इस इकाई में इन सब नेताओं के बारे में अध्ययन करने के स्थान पर हम स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के नेतृत्व के विभिन्न विशेषताओं के पैटर्न्स का अध्ययन करेंगे। इस इकाई में विभिन्न चरणों में नेतृत्व एवं उनकी भूमिका की चर्चा करेंगे :- 1) नेहरूवादी काल का नेतृत्व (1950–1960 के मध्य का दशक ), 2) क्षेत्रीय नेतृत्व का उदय (1960–1980 के दशक), 3) तथा नव उदारवादी युग में नेतृत्व – 1990 के दशक से लेकर अभी तक।

---

## 11.2 नेहरूवादी युग के दौरान नेतृत्व (1950 दशक से 1960 दशक के मध्य तक)

---

स्वतंत्रता के बाद के पहले दो दशकों के दौरान भारत में विशेष रूप से नेहरूवादी युग (1950 से 1960 के दशक के मध्य तक) ने आधुनिक भारत की नींव रखने में निर्णायक भूमिका निभाई थी। बड़ी संख्या में उस समय के नेता राष्ट्रीय आंदोलन की उपज थे और उन्होंने राजनीतिक आदर्शों और मूल्यों में योगदान दिया था जिन्होंने देश में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन लाने में निर्देशन का कार्य किया था। वे प्रमुख बुद्धिजीवी थे, जिन्होंने लोकतांत्रिक मूल्यों पक्षधर पर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन के लिए योगदान दिया। उनमें से कुछ ने भारत के संविधान को आकार देने में भाग लिया था, खासकर संविधान सभा में बहस में भाग लेकर। वास्तव में वे राष्ट्रीय आंदोलन और स्वतंत्रता के बाद की अवधि के बीच एक कड़ी थे। इस अवधि के नेताओं में जवाहर लाल नेहरू, बी. आर. अंबेडकर (1956 में निधन), जयप्रकाश नारायण, श्यामा प्रसाद मुखर्जी (1953 में निधन), लाल बहादुर शास्त्री, ई. एम. एस. नंबूद्रीपाद, राम मनोहर लोहिया तथा जयप्रकाश नारायण शामिल थे। वास्तव में, सच्चे भारतीय राजनीति के लोकतंत्र को दर्शाते हुए स्वतंत्रता के बाद के प्रारंभिक चरण की नेहरू कैबिनेट में काँग्रेस एवं गैर-काँग्रेस पार्टी के नेता शामिल थे, जैसे कि बी. आर. अंबेडकर तथा श्यामा प्रसाद मुखर्जी। नेहरूवादी युग के कुछ नेता सरकार का हिस्सा थे, जबकि कुछ ने बाहर रहकर सरकार की नीतियों की आलोचना की तथा लोगों को लामबंद किया। इस चरण में भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने भारत के विकास के लिये रणनीतियों और नीतियों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उनके विकास मॉडल पेश किया उसे हम नेहरूवादी मॉडल कहते हैं। यह मॉडल धर्म-निरपेक्षता, गुटनिरपेक्षता तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों पर आधारित था। इस मॉडल ने नीतियों को बनाने में एवं कार्यान्वयन में राज्य ने अग्रणी भूमिका निभाई थी। इस समय राज्य विकास योजना बनाने के लिए योजना आयोग की स्थापना की थी। इस चरण काँग्रेस के वर्चस्व का माना जाता है जिसे काँग्रेस व्यवस्था का नाम दिया गया था। इसे रजनी कोठारी ने काँग्रेस की



व्यवस्था का काल माना था। काँग्रेस के प्रभुत्व का मतलब, ज्यादातर राज्यों में काँग्रेस के नेतृत्व में सरकारों का बनना था। इस व्यवस्था में, राष्ट्रीय स्तर पर काँग्रेस का नेतृत्व तथा नीति निर्देशन जवाहर लाल नेहरू द्वारा प्रदान किया गया था, जबकि राज्यों के स्तर पर इसका नेतृत्व राज्य स्तरीय नेताओं द्वारा प्रदान किया गया था। ज्यादातर राज्यों में काँग्रेस के हाथों में ही नेतृत्व था जबकि कुछ राज्यों में जैसे कि केरल में काँग्रेस के साथ-साथ गैर काँग्रेस दलों के हाथों में नेतृत्व था। यद्यपि इनका ब्लू-प्रिंट यानि कि नीतियों का निर्माण एवं निर्देशन राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्र सूची के माध्यम से किया जाता था, लेकिन वास्तविक रूप से इसका क्रियान्वयन राज्य के स्तर पर किया जाता था। इस प्रकार राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय नेतृत्व ने नीतियों के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाई थी। इन नीतियों में भूमि सुधार, कल्याणकारी नीतियां, सकारात्मक कार्य, आधारभूत ढांचा एवं संस्थाओं का विकास इत्यादि। यद्यपि इन नीतियों ने लोगों की इच्छाओं एवं जरूरतों को पूरा नहीं किया, लेकिन उन नीतियों ने आधुनिक भारत के निर्माण की नींव रखी, और इसमें निर्णायक भूमिका नेहरूवादी काल के नेतृत्व ने निभाई। काँग्रेस के प्रभुत्व का तात्पर्य यह नहीं कि देश में गैर-काँग्रेसी नेतृत्व गायब था। इसका अर्थ यह था कि ज्यादातर राज्यों में काँग्रेस का ही नेतृत्व था लेकिन कई राज्यों में गैर काँग्रेसी दलों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उदाहरण के लिए केरल में, 1957-1959 में कम्युनिस्ट नेता नंबूदीरीयाद ने पहली बार केरल में गैर-काँग्रेसी सरकार का नेतृत्व किया था। यह विश्व का पहला ऐसा प्रयोग था जहां चुनावों के बाद कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में सरकार का गठन किया गया था। नंबूदीरीयाद के नेतृत्व में केरल में भूमि-सुधार कार्यक्रम लागू किये गये थे। समाजवादी पार्टियों के नेताओं जैसे पी.एस.पी., एस.एस.पी., ने काँग्रेस की नीतियों की आलोचना की, और उन्होंने किसानों के लिये कल्याणकारी नीतियों की जरूरतों के महत्व को रेखांकित किया। तथा उन्होंने ओ.वी.सी. के लिये आरक्षण भी प्रदान किया विशेषकर बिहार एवं यू.पी. जैसे उत्तर भारतीय राज्यों में। दक्षिण भारत में, तमिलनाडु में सी.एम. अन्नादुरे ने आत्म-सम्मान एवं तमिल संस्कृति के महत्व को रेखांकित किया।

1964 में नेहरू की मृत्यु की पश्चात् राष्ट्रीय स्तर के नेतृत्व की प्रकृति में काफी परिवर्तन देखने को मिला। यह वह काल भी था जब काँग्रेस की लोकप्रियता का पतन होने लगा था। खाद्य संकट, सूखा, मंहगाई ने लोगों को काँग्रेस के खिलाफ कर दिया। विपक्षी पार्टियों समाजवादी, एस.एस.पी., पी.एस.पी., जन संघ, स्वतंत्र पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टियां, रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया ने गैर-चुनावी राजनीति में लोगों को लामबंद किया था। काँग्रेस के खिलाफ लोगों का गुस्सा के प्रभाव 1967-1969 के चुनावों में काँग्रेस की हार के रूप में दिखाई दिया था। नेहरू के बाद के काल में, काँग्रेस के भीतर गुटबाजी भी काफी बढ़ गई थी, जिसके कारण राष्ट्रीय स्तर एवं राज्य स्तर पर नेतृत्व को चुनौती मिली और इंदिरा गांधी को भी इन चुनौतियों का सामना करना पड़ा था। इसके परिणामस्वरूप कई राज्यों में नये नेतृत्व का उदय हुआ। 1960-1970 के दशकों में कई नेताओं ने, नई पार्टी का भी गठन किया। इनमें से कुछ नेता राज्य स्तर से राष्ट्रीय स्तर पर उभर कर सामने आये। यह काल काँग्रेस के प्रभुत्व या वर्चस्व की समाप्ति का काल भी माना जाता है। इस इकाई के अगले भाग में आप 1960 से 1980 दशकों के बीच के नेतृत्व के तरीकों के बारे में अध्ययन करेंगे।

## अभ्यास प्रश्न 1

नोट: i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की जाँच इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) नेहरूवादी काल के दौरान भारत में नेतृत्व की विशेषताओं की पहचान कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

2) 1960 से 1980 दशकों में राज्य स्तरीय नेतृत्व के उदय की चर्चा कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

### 11.3 राज्य स्तरीय नेतृत्व का उदय (1960–1980 के दशक)

1967–1969 के आम चुनावों में मिली पराजय के पश्चात् तथा कई राज्यों में भी हार के बाद के समय को काँग्रेस व्यवस्था की समाप्ति के तौर पर माना गया। और तथा इसके बाद नये नेतृत्व का उदय होने लगा। उनमें से कुछ नेता काँग्रेस के थे, जो स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व राजनीति में काफी सक्रिय थे। वे काँग्रेस के भीतर मतभेद, गुटबाजी के कारण काँग्रेस से बाहर होने को मजबूर हुए थे। उन्होंने अपनी खुद की पार्टी बनाई और लोगों की इच्छाओं एवं आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व किया। जिन नेताओं का प्रभाव राज्य की राजनीति में सर्वाधिक दिखाई दिया, वे हैं : उत्तर भारत में (उत्तर प्रदेश, बिहार और हरियाणा में चरण सिंह), हरियाणा में देवीलाल, ओड़ीशा में बीजू पटनायक, पश्चिम बंगाल में ज्योति बसु, तमिलनाडु में करुणानिधि और एम. जी. रामचंद्रन। इनमें से कुछ नेताओं ने राष्ट्रीय राजनीति को भी काफी प्रभावित किया था। उन्हें अपने राज्य या क्षेत्र से काफी समर्थक हासिल था। यह सिलसिला लगभग दो दशकों तक जारी रहा (1970–1980)। हालांकि इनमें से कुछ नेता 1970 से पहले राज्य की राजनीति में काफी सक्रिय थे, इसलिये उन्होंने या तो विपक्ष के तौर पर या फिर मुख्यमंत्री के तौर पर अग्रणी भूमिका निभाई थी। बिहार में कर्पूरी ठाकुर, आंध्र प्रदेश में एन. टी. रामाराव, कर्नाटक में देवराज उसे कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो इस प्रकार के नेतृत्व के तरीकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें से कुछ नेता दलितों, वंचितों या कमजोर तबकों के लिये वैचारिक, मार्गदर्शन का प्रतीक बन गये। साहित्य में राज्य स्तरीय नेतृत्व के उदय को इस तरह के कारकों से जोड़कर समझा गया है – नये सामाजिक समूहों का उदय, किसानों एवं पिछड़े वर्गों का जिनको राज्य की नीतियों से जैसे कि भूमि सुधार हरित क्रांति लाभ मिला। कंचन चंद्रा (2004) ने यह

तर्क दिया कि जिन नेताओं ने अपनी मूल पार्टी को छोड़कर नई पार्टी बनाई, उनको मूल पार्टी में “प्रतिनिधित्व रूकावट” का सामना करना पड़ा था।

चरण सिंह (1902–1987) ने उत्तर भारत में विशेषकर उत्तर प्रदेश में कृषक समुदाय एवं अन्य पिछड़े वर्गों को नेतृत्व प्रदान किया था। इसमें बिहार एवं हरियाणा भी शामिल हैं। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लिया था और 1969 तक कांग्रेस में ही बने रहे थे। वे दो बार उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री भी बने थे। 1969 में उन्होंने कांग्रेस को छोड़कर दूसरी पार्टी भारतीय क्रांति दल/बी. के. डी./बी. एल. डी./एल. डी. का गठन किया था। कई पुस्तकों के रचयिता होने के कारण उन्हें टी. जे. बार्यस (1988) ने “ओर्गेनिक इंटेलेक्चुल” (ओर्गेनिक बुद्धिजीवी) कहा था। उन्होंने उत्तर प्रदेश में भूमि सुधारों को लागू करने में अग्रणी भूमिका निभाई थी, अन्य पिछड़े वर्गों विशेषकर कृषक वर्ग को भी लाभबंद किया था। कांग्रेस में रहते हुए उन्होंने कांग्रेस की नीतियों का विरोध किया था, खासकर ‘कोऑपरेटिव फार्मिंग’ को लागू करने के प्रस्ताव का। राज्य स्तरीय राजनीति में सक्रिय रहने के बाद, 1977 में उन्होंने अपनी पार्टी का विलय जनता पार्टी में कर दिया और वो भारत सरकार में मंत्री तथा कुछ समय के लिये (जुलाई 28, 1979 – जनवरी 14, 1980 तक) भारत के प्रधानमंत्री भी बने। उनके विचार एवं व्यक्तित्व का उत्तर भारत में विशेषकर कृषक समुदाय एवं पिछड़े वर्गों पर काफी प्रभाव पड़ा था (सिंह – 2014)।

जयप्रकाश नारायण (1902–1979) जिन्हें हम जे. पी. के नाम से भी जानते हैं, एक समाजवादी नेता थे और उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में भी भाग लिया था। स्वातंत्रोत्तर काल में उन्होंने सत्ता के खिलाफ लोगों को लामबंद किया था, तथा आपातकाल के विरुद्ध भी लोगों को एकजुट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। यह आंदोलन जे. पी. आंदोलन के नाम से जाना जाता है। उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों को लामबंद किया था, विशेषतौर पर छात्रों को जे. पी. समाज के ढांचे में परिवर्तन लाना चाहते थे। इस परिवर्तन को वे “संपूर्ण क्रांति” (टोटल रिवोलूशन) कहते थे। आपातकाल की समाप्ति के पश्चात जब वे जेल से रिहा किये गये तब उन्होंने जनता पार्टी के गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह पार्टी पाँच अन्य पार्टियों को मिलाकर बनाई गई थी। जे. पी. कभी सरकार में शामिल नहीं हुए थे। कुछ युवा नेता जिन्होंने जे. पी. आंदोलन में भाग लिया था उन्होंने भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लालू प्रसाद यादव, नीतीश कुमार, राम विलास पासवान और सुशील कुमार मोदी कुछ उदाहरण हैं। इनमें से दो नेता बिहार के मुख्यमंत्री भी बने, एक नेता केन्द्र में मंत्री बने तथा एक बिहार में मुख्य विपक्षी नेता हैं।

एन. टी. रामाराव (1923–1996) तेलगू फिल्म उद्योग में एक अभिनेता थे। उन्होंने 1982 में तेलगू देशम पार्टी (टी. डी. पी.) का गठन किया था। वे अविभाजित आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री थे। वास्तव में वे आंध्र प्रदेश के प्रथम गैर-कांग्रेसी मुख्यमंत्री थे। उन्होंने आंध्र प्रदेश के विभिन्न वर्गों को तेलगू विड्डा (तेलगू गौरव) को फिर से दिलाने, तेलगू जाति (राष्ट्र सम्मान), जाति गौरम्मन, (राष्ट्र-सम्मान) को बहाल करने के सवाल पर लोगों को लामबंद किया था। उन्होंने शिकायत की कि कांग्रेस की केन्द्र सरकार ने आंध्र प्रदेश के नेताओं के साथ सम्मानजनक व्यवहार नहीं किया था। और उन्होंने वादा किया कि तेलगू देशम पार्टी की सरकार बनाकर वे इसे पुनर्स्थापित करेंगे। उन्होंने राज्य में, लोक लुभावन नीतियां और पिछड़े वर्गों के लिये चावल एवं कपड़े, गरीबों एवं पिछड़ों के लिये मकानों के निर्माण, तथा किसानों के लिए निःशुल्क बिजली

जैसी योजना लागू की थी। उनकी मृत्यु के बाद कुछ समय के लिये चंद्रबाबू नायडू द्वारा नेतृत्व प्रदान किया गया था। कुछ महत्वपूर्ण पदों में वे आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री और केन्द्रीय मंत्री भी थे।

कर्पूरी ठाकुर (1924–1988) भारत में नेतृत्व में विशेषकर हिन्दी भाषी क्षेत्रों में विशेष स्थान है, उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लिया और वे लगभग बिहार विधान सभा के सदस्य भी रहे थे। वे समाजवादी नेता भी थे। बिहार के मुख्यमंत्री के तौर पर उन्होंने पिछड़े वर्गों के लिये आरक्षण नीति की शुरुआत की थी। इस नीति को हम “कर्पूरी ठाकुर सूत्र” या “कर्पूरी ठाकुर फोरमूला” के नाम से जानते हैं। इस फार्मूले के अनुसार, उन्होंने ओ.बी.सी. के लिये आरक्षित कोटे को उप-विभाजित किया था। ये कोटा विभिन्न श्रेणियों में अत्यंत पिछड़ा वर्ग (ओबीसी), अति पिछड़ा वर्ग (ईबीसी) एवं अन्य समूहों में विभाजित किया था। कर्पूरी ठाकुर फार्मूले की हमेशा आरक्षण की नीति में संदर्भ के रूप में चर्चा होती है। उनकी मृत्यु के पश्चात् लालू प्रसाद यादव और नीतीश कुमार बिहार में पिछड़े वर्गों के नेता के तौर पर उभरे। 1980 के दशक में असम में भी नये नेतृत्व का उदय हुआ था। यह नेतृत्व छात्र आंदोलन से उभरा। असम में छः साल के आंदोलन (1979–1985) विदेशी विरोधी आंदोलन का नेतृत्व ऑल इंडिया असम स्टूडेंट यूनियन (आसू) ने किया। आंदोलन समाप्ति के बाद जिन छात्रों ने विदेश विरोधी आंदोलन की स्थापना की उन्होंने क्षेत्रीय पार्टी असम गण परिषद की (ए.जी.पी.) की स्थापना की। आसू के कुछ नेता ए.जी.पी. के नेता बने जिनमें प्रफुल्ल कुमार मंहत दो बार असम के मुख्यमंत्री बने थे। वास्तव में बी.जे.पी. नेता सर्वानंद सोनोवाल और हेमंत विस्वा सरमा भी मुख्यमंत्री बनने से पूर्व छात्र नेता थे यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि असम में नेतृत्व पूर्वोत्तर भारत में एक पैटर्न का प्रतिनिधित्व करता है। पूर्वोत्तर भारत के लगभग सभी राज्यों में कई नेताओं ने छात्र राजनीति से शुरुआत की थी।

#### 11.4 1990 दशक से नेतृत्व

1990 के दशक से नेतृत्व की विशेषताओं को हम तभी समझ सकते हैं जब हम इस काल के राजनीतिक एवं सामाजिक संदर्भ को समझने की कोशिश करें। अपने पढ़ा होगा कि 1950 से 1990 दशकों के बीच में नेहरू के नेतृत्व में जो भूमिका राज्यों में निभाई गई थी वही उस वक्त नीतियों को लागू करने में निभा रही थी। सन् 1991 से नेतृत्व उभरा उसका संदर्भ बदल गया था। प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव ने वित्त मंत्री मनमोहन सिंह के साथ सुधारों को लागू किया था। इन सुधारों ने बाजार को निर्णायक भूमिका निभाने का अवसर प्रदान किया, और बाजार राज्य के साथ देश के विकास के संबंध में भूमिका तय की। मनमोहन सिंह बाद में (2004–2014) प्रधानमंत्री बने। इस काल में भी पहचान की राजनीति की भूमिका बढ़ गई थी, विशेषकर जाति (दलित तथा ओबीसी) धर्म और जेंडर आधारित राजनीति। इन परिवर्तनों ने नेतृत्व की प्रकृति को भी प्रभावित किया। इस वक्त के नेतृत्व की विशेषताएँ भी पिछले नेतृत्व के संबंधित थीं। इस काल के नेतृत्व की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं – दलित एवं ओ.बी.सी. के नेतृत्व की नई पीढ़ी, महिला नेतृत्व, नेतृत्व के निर्माण में वंश की भूमिका तथा धार्मिक एवं सांस्कृतिक राष्ट्रवाद आधारित नेतृत्व की भूमिका में वृद्धि।

आपने पिछले भाग में पढ़ा होगा कि 1960–1980 के दशकों के दौरान भारत के विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व का उदय हुआ था। नेतृत्व के उदय की प्रक्रिया विशेषकर ओ.

बी.सी. एवं दलितों के बीच आगे के वर्षों में भी जारी रही। इनमें मतभेदों के बावजूद इस नेतृत्व में सामाजिक न्याय और कल्याण के मामलों में समान दृष्टि व्याप्त थी। वे उन बुद्धिजीवियों से प्रेरित हुए, जिन्होंने कमजोर वर्गों के हितों के लिये हमेशा संघर्ष किया। उदाहरण के लिये हिन्दी भाषी क्षेत्र में, बी.आर. अंबेडकर, राम मनोहर लोहिया और चरण सिंह के विचार एवं व्यक्तित्व का दलित एवं ओ. बी. सी. नेतृत्व पर प्रभाव पड़ा था (सिंह, 2014)। अंबेडकर से प्रभावित होकर, कांशीराम ने बी. एस. पी. का गठन किया था तथा मायावती एक राज्य की मुख्यमंत्री भी बनी। अपने प्रारंभिक वर्षों में बिहार के मुख्यमंत्री के तौर पर लालू प्रसाद यादव ने विकास के ऊपर निम्न जातियों के आत्म-सम्मान को अधिक प्राथमिकता दी थी। नीतीश कुमार ने अपने मुख्यमंत्री काल में बालिका शिक्षा को अपनी प्राथमिकताओं में सबसे ऊपर रखा। उन्होंने लड़कियों के लिये साइकिल योजना के अंतर्गत लड़कियों को साइकिल प्रदान की ताकि वे अपने स्कूल समय पर जा सकें। 1990 के दशक से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सिद्धांतों जोकि हिन्दू प्रतीकों पर आधारित है, से प्रभावित नेतृत्व की भारतीय राजनीति भूमिका बढ़ी। बी.जे.पी. के नेता जैसे कि लालकृष्ण आडवाणी और अटल बिहारी वाजपेयी जो कि छः साल तक प्रधानमंत्री भी थे, और अब (2021) नरेन्द्र मोदी जो 2014 से लगातार प्रधानमंत्री है, कुछ ऐसे उदाहरण है भारत में महत्वपूर्ण नेतृत्व के। भारत के कई राज्यों में, बी.जे.पी. ने सरकार में तथा उससे बाहर नेतृत्व प्रदान किया है। उत्तर प्रदेश में कल्याण सिंह चौहान, हरियाणा में मनोहर लाल खट्‌टर जैसे नेताओं ने राज्यों में मुख्यमंत्री के तौर पर नेतृत्व प्रदान किया है। यहाँ तक 2001-2014 तक नरेन्द्र मोदी भी प्रधानमंत्री बनने से पहले गुजरात के मुख्यमंत्री थे।

स्वातंत्रोत्तर भारत में, ऐसे कुछ उदाहरण है जहाँ पर राष्ट्रीय स्तर पर एवं राज्य स्तर पर ऐसे नेता हैं जो राजनीतिक दलों के मुखिया है, संसद सदस्य है, विधान सभा सदस्य है, प्रधानमंत्री भी रहे हैं, मंत्री भी रहे हैं, वे सब किसी न किसी परिवार से संबंध रखते हैं। इसका अर्थ यह है कि इन नेताओं के परिवार के सदस्य किसी न किसी संस्था के प्रमुख पद पर आसीन रहे हैं। किसी नेता की राजनीति पारिवारिक पृष्ठभूमि को अकसर वंशवादी राजनीति से जोड़ा जाता है। कुछ समकालीन नेता जो किसी ने किसी पद पर हैं, वे ऐसे परिवारों की दूसरी, तीसरी या चौथी पीढ़ी है जिनकी राजनीतिक पृष्ठभूमि है। इस प्रकार के नेताओं की पहली पीढ़ी के स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया था, तथा कुछ नेता उसके बाद ही राजनीति में प्रवेश किया था। भारत में वंश एवं राजनीति के बीच आंतरिक संबंधों पर एक महत्वपूर्ण किताब कंचन चंद्रा (2016) ने लिखी है। जिसका शीर्षक है, “डेमोक्रेटिक डायनेस्टिज : स्टेट, पार्टी एण्ड फैमिली इन कंटपरेरी इंडियन पोलिटिक्स है”। इसमें उन्होंने “लोकतंत्रिक में वंशवाद” की अवधारणा का उल्लेख किया है। भारतीय संसद के संदर्भ में, वे तर्क देती हैं कि, आधुनिक राजनीतिक संस्थाओं को प्रभावित करने वाले दो प्रमुख कारक है – राज्य एवं राजनीतिक दल। उनका तर्क है कि राजनीतिक परिवार राजनीति में इसलिए आते हैं सरकार के साथ जुड़ने से उन्हें कुछ प्रतिफल प्राप्त हो सके। राजनीतिक दलों की कमजोरी के कारण ऐसे परिवार के सदस्यों चुनाव में टिकट प्राप्त हो जाते हैं। मतदाता भी चुनावों के समय अपना मत देते वक्त यह सोचते हैं और वोट देते हैं कि वंशवाद एक प्रकार से राज्य और राजनीति दलों की हकीकत बन गया है।

## 11.5 महिला नेतृत्व

भारत में ज्यादातर नेतृत्व पर पुरुषों का ही वर्चस्व कायम है। महिलाओं को विधायी निकायों में आरक्षण देने की माँग भी अभी तक स्वीकार नहीं की गई है। लेकिन पंचायती राज संस्थाओं में उन्हें 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया है, इसने महिलाओं का स्थानीय निकायों में प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित किया है। यद्यपि इन निकायों में महिलाओं को पितृसत्ता से चुनौती मिलती रहती है, फिर भी उनकी भागीदारी के कारण उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सजग एवं आत्मविश्वास भी बढ़ा है। स्वातंत्रोत्तर काल में महिलाओं ने राज्य स्तर पर नेतृत्व प्रदान किया है। कई राज्यों में वे मुख्यमंत्री भी बनी हैं। इनमें से कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :— उत्तर प्रदेश में सुचेता कृपलानी, गुजरात में आनंदीबेन पटेल, असम में अनवरा तैमूर, जम्मू एवं कश्मीर में महबूबा मुफ्ती, उत्तर प्रदेश में मायावती, तमिलनाडु में जयाललिता, पश्चिम बंगाल में ममता बनर्जी, राबड़ी देवी बिहार में। इनमें से तीन नेता मायावती, ममता बनर्जी और जयाललिता प्रतिनिधि नेतृत्व के उदाहरण हैं। मायावती (जन्म, 1956), बी. एस. पी. की नेता, चार बार मुख्यमंत्री बनी (1995–2007)। उन्होंने अंबेडकर की विचारधारा से प्रभावित होकर और काशीराम से प्रभावित होकर उत्तर प्रदेश में दलित एवं पिछड़े वर्गों के लिये कल्याणकारी नीतियों विशेषकर अंबेडकर ग्राम योजना के तहत को लागू किया था। उन्होंने उन चिंतकों और प्रतिभाओं के नाम पर भी नीतियां बनाई तथा उन प्रतीकों को सम्मान दिया, जिन्होंने सामाजिक न्याय के उद्देश्य को बढ़ावा दिया था। ममता बनर्जी का मामला इन तीनों में अलग है। ममता बनर्जी ने 1999 में अपनी पार्टी तृणमूल कांग्रेस खुद बनाई थी। जबकि बी.एस.पी. की स्थापना काशीराम ने की थी तथा ए. आई. ए. डी. एम. के. की स्थापना एम. जी. रामचंद्रन ने की थी। ममता बनर्जी केन्द्र में अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार में रेलवे मंत्री भी बनी थी। वे एक युवा नेता के तौर पर राजनीति में आई थी और कांग्रेस छोड़कर टी.एम.सी. बनाई। उसने किसानों को नंदीग्राम एवं सिंगूर में भूमि अधिग्रहण के खिलाफ लामबंद किया था। वे पश्चिम बंगाल की तीन बार मुख्यमंत्री बनी : 2015–2016, 2016–2021 और 2021 में। उन्होंने वामपंथी सरकार को 35 साल तक राज्य करने के बाद सत्ता से बाहर कर अपनी पहली सरकार बनाई थी।

### अभ्यास प्रश्न 2

नोट: i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तर की जाँच इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

- 1) 1990 दशक में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संदर्भों में नेतृत्व के चरित्र की चर्चा कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में महिला नेतृत्व की प्रकृति पर एक निबंध लिखिये।

.....

.....

.....

.....

.....

## 11.6 संदर्भ

ब्रास, पॉल आर (1993) – “चौधरी चरण सिंह : “एन इंडियन पोलिटिकल लाइफ,” ई. पी. डब्ल्यू. वोल्यूम, 28, नं. 39, 25 सितंबर, पेज 2087–90।

ब्रायर्स, टी. जे. (1988) – “चौधरी चरण सिंह, 1902–1987 : एन असेसमेंट,” द जर्नल ऑफ पीजेंट स्टडीज, वोल्यूम, 15, नं. 2, जनवरी, पेज 139–89।

फोरेस्टर, डी. बी (1966) – चेंजिंग पैटर्नस ऑफ पोलिटिकल लीडरशिप इन इंडिया, द रिव्यू ऑफ पोलिटिक्स, 28, (3), 308–318।

चंद्र, कंचन (2004) – व्हाई एथनिक पार्टिज एक्सीड, पेट्रोनेज एन्ड एथानिक हैड काउन्ट इन इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज।

गुहा, आर. (2010) – “पोलिटिकल लीडरशिप इन”, एन. जी. जयाल एण्ड पी. बी. मेहता, ऑक्सफोर्ड कंपेनियन टू पोलिटिक्स इन इंडिया, ओ.यू.पी.।

जैफरलो, (2003) – “इंडियाज साईलेंट रिवोल्यूशन : राइज ऑफ लो कास्ट इन नोर्थ इंडियन पोलिटिक्स”, परमानेंट ब्लैक, न्यू-दिल्ली।

जैफरलो एण्ड कुमार (संजय) 2009 – राइज ऑफ प्लेबियंस : द चेंजिंग फेस ऑफ इंडियन लेजिसलेटिव असंबलीज, राउटलेज, न्यू दिल्ली।

कन्नन, आर. (2010) – अन्ना : द लाइफ एण्ड राइमस ऑफ सी. एन. अन्नादुरे, पेंग्विन, न्यू-दिल्ली।

खिलनानी, सुनील (2016) – इनकारनेशंस : इंडिया इन 50 लाईज, मॉविन, एलेन लेन।

मेनर, जेम्स (1980) – “प्रेग्मेटिक प्रोग्रेसिज्ज इन रीजनल पोलिटिक्स द केस ऑफ ववेराज उर्स”, ई.पी.डब्ल्यू. एनूअल नं. 15 (5/7), 18 फरवरी, पेज. 201–13।

पाई, सुधा (2002) – दलित असर्सन एन्ड द अनफिनिश डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशन : द बहुजन समाज पार्टी इन उत्तर प्रदेश सेज प्रकाशन, न्यू-दिल्ली।

सिंह, जगपाल (2021) – कास्ट, स्टेट एण्ड सोसाइटी : डीग्रीज ऑफ डेमोक्रेसी इन नोर्थ इंडिया, राउटलेज, लंदन एण्ड न्यूयार्क।

सिंह, जगपाल (2015) – “कपूरी ठाकुर : ए सोशलिस्ट लीडर इन द हिंदी बेल्ट,” ई. पी.डब्ल्यू. वोल्यूम 50, नं. 3, 17 – जनवरी, पेज 54–60।

सिंह, जगपाल (2014) – “लीगेसीज ऑफ डॉ. बी. आर. अंबेडकर एण्ड हिज कंटेपरेरीज इन उत्तर प्रदेश, ए कम्पेरीजन ऑफ अंबेडकर, चरण सिंह एण्ड लोहिया”,

इन पती बिस्मोय *इनवेकिंग अंबेडकर, कंट्रीव्यूशंस, रिसेरशंस लीगोसिंग*, प्राईमस बुक्स, न्यू-दिल्ली पेज 93–106।

शास्त्री, संदीप, आर. एस. (2017) – “द मोदी फैक्टर इन 2014 इन एस.के. सूरी पालिसकार सुहास, इलैक्टोलर पोलिटिक्स” *इन इंडिया : द इमरजेंस ऑफ बी. जे. पी.*, राउटलेज।

सूद निकिता (2012) – *लिबरेलाईजेसवः हिन्दू नेशनलिज्म एण्ड स्टेट : ए बायोग्राफी ऑफ गुजरात*, ओ.यू.पी.।

सूरी, के. सी. (2004), “तेलगू देशम पार्टी : राइज एण्ड प्रोस्पेक्ट्स ऑफ फोर फ्यूचर”, *ई.पी.डब्ल्यू.*, 39 (14) जनवरी

---

## 11.7 सारांश

---

लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था का नेतृत्व एक महत्वपूर्ण पहलू है। नेतृत्व ने आधुनिक भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। नेतृत्व विभिन्न प्रकार की भूमिका में कार्य करता है – जैसे कि मुख्यमंत्री, विपक्ष के नेता, राजनीतिक दलों के नेता तथा गैर-राजनीतिक दलों के भी नेता। स्वातंत्रोत्तर काल में, भारत में नेतृत्व को तीन चरणों में देखा जा सकता है – नेहरूवादी चरण (1950–1960 के दशकों में); 1960 दशक के मध्य से 1980 दशक तक; तथा 1990 के दशक से अभी तक। प्रथम चरण में, नेहरूवादी मॉडल के अंतर्गत राष्ट्रीय नेतृत्व ने एक विकासवादी मॉडल लागू किया जिसमें राज्यों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। फिर भी, नेहरूवादी मॉडल ने लोगों आकांक्षाओं को पूरा नहीं किया 1960 के दशक तक। इस संदर्भ में, गैर-काँग्रेस नेताओं ने लोगों की समस्याओं के प्रति उन्हें लामबंद किया। इस काल में काँग्रेस के भीतर गुटबाजी भी देखी गई थी। इस कारण 1960 दशक के अंत तक काँग्रेस का पतन शुरू हो गया था। आगे के दो दशकों में, विभिन्न राज्यों में कई नेता उभर कर सामने आये थे। इनमें से कुछ नेताओं ने राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इस चरण के नेताओं ने विभिन्न सामाजिक वर्गों का प्रतिनिधित्व किया, जैसे कि किसान, ओ.बी.सी., दलित, धार्मिक, इत्यादि, एवं राजनीति को एक नई दिशा दी। नेतृत्व का कार्य एवं इसका संदर्भ आर्थिक सुधारों के लागू होने के कारण 1990 दशक से बदल गया। पहले कि भांति, राज्यों के साथ-साथ बाजार की भी नीतियाँ बनाने एवं लागू करने में विभिन्न राज्यों में निर्णायक भूमिका रही थी। इस चरण में पहचान पर आधारित राजनीति जैसे कि जाति, धर्म, जेंडर और धर्म को भी अधिक बढ़ावा मिला था। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न जातियों का नेतृत्व राज्यों में उभर कर सामने आया। इस चरण में महिला नेतृत्व के उदय में भी बढ़ोतरी देखी गई, हालांकि पुरुषों की तुलना में उनकी संख्या कम थी। इसके अलावा, कई नेता राजनीतिक परिवारों से संबंध रखते हैं।

---

## 11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

---

### अभ्यास प्रश्न 1

- 1) नेहरूवादी काल में, अधिकतर नेतृत्व वह था जिसने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लिया था। क्योंकि यह काँग्रेस के वर्चस्व का युग था, अधिकतर राज्यों में भी सत्ता पर काँग्रेस पार्टी का ही नेतृत्व था। निति निर्धारण में भी नेहरूवादी मॉडल



का प्रभाव अधिक था। जिसमें राज्य ने देश के सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। गैर-काँग्रेसी नेतृत्व ने भी सरकार की नीतियों की आलोचना करने में लोगों को लामबंद करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

- 2) 1960 दशक से 1980 दशक के अंत के काल में, देश के विभिन्न क्षेत्रों में राज्य – आधारित नेतृत्व का उदय देखा था। यह इसलिए हुआ क्योंकि 1960 दशक के अंत, तक काँग्रेस का पतन शुरू हो गया था और लोगों की आकांक्षाओं को पूरा करने में नये नेतृत्व का उदय शुरू हो गया था। इनमें से कुछ नेताओं ने अपनी अलग पार्टी बनाई थी।

## अभ्यास प्रश्न 2

- 1) 1990 दशक से भारत में राजनीतिक संदर्भ का केन्द्र आर्थिक सुधार थे। इसने राज्य के साथ बाजार को विकास की दिशा तय करने का अवसर प्रदान किया था। इस समय के राजनीतिक संदर्भ की संकेतक पहचान एक मुख्य विशेषता बन गई थी। इसने कमजोर एवं वंचित वर्गों जैसे कि दलित, ओ.बी.सी., महिलाओं को रणनीति में आने का अवसर प्रदान किया था।
- 2) स्वातंत्रोत्तर काल में, महिलाओं ने विभिन्न राज्यों में कई पदों पर रहकर नेतृत्व किया था जैसे कि मुख्यमंत्री या पार्टी की नेता के तौर पर। इनमें से कुछ महिलाओं ने समाज कल्याण एवं विकास के लिये नीतियाँ बनाने में अपना योगदान दिया था तथा कुछ ने सामूहिक कार्य के लिए लोगों को लामबंद किया था। इनमें मायावती, ममता बनर्जी, जयललिता ऐसे ही कुछ वर्तमान में उदाहरण हैं।

THE PEOPLE'S  
UNIVERSITY

